इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अराव्णः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-37 जून अंक-5

युग प्रवर्तक

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा

कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

उठो, जागों, अपने आप को संभालो

आर्य समाज महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित एक अग्निपिण्ड है जो जनमानस में निरंतर धधकता प्रतीत होता है। जो अपने अन्दर अविद्या अंधकारादि को भरमसात कर वेदों के प्रकाश से संसार को आलोकित कर रहा है। जब भारत की आभा प्रतिमा पर ग्रहण लगा था तब सदियों वाद ऋषि ने भारत को पतन के गहरे अन्धकार से निकाल कर मजबूत सुरक्षा कवच प्रदान किया और आर्य समाज की स्थापना कर वैदिक धर्म का पुनरूद्धार और वेद प्रचार का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने वेदों के सत्य स्वरूप को जीवन व जगत के साथ जोड़ा और सिद्ध किया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद के आदेश उपदेश और संदेश को जन मानस तक पहुँचाने के लिये आर्य समाज के नियम में स्पष्ट आदेश दिया कि वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इसके बाद वेद प्रचार ही आर्य समाज का मुख्य कार्य हो गया। वेदों की रक्षा, परम्परा, तथा स्वरूप को सुरक्षित रखना आर्य समाज को उत्तराधिकार में मिला है। वेदों के संदेश को जन-जन तक पहुँचाना आर्य समाज का मुख्य दायित्व है। वेद ज्ञान तथा वेद प्रचार आर्य समाज की पहचान है।

इतिहास गवाह है वेद परम्परा को जीवित रखने और आगे बढ़ाने के लिये न जाने कितने लोगों ने अपना तन-मन न्योछावर कर दिया। उन्हीं बलिदानी तपस्वी, त्यागियों के पुण्य

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	सर्वोपरि सत्ता	2
4.	अथर्ववेद में राजनीति एवं विज्ञान	6
5.	विश्व में शान्ति	11
6.	चरित्रवान	18
7.	गाय	27
8.	योग	28

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

जून

शिक्षक का सम्मान

का वां भृदुपमातिः कया न आश्विना
गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीकं उरुष्यतं
माध्वी दस्रा न ऊती॥

(ऋग्वेद 4/43/4)

पदार्थ- (**हूयमाना**) हे सादर आमन्त्रित (**माध्वी**) माधुर्यपूर्ण व्यवहारवाले (**दस्रा**) दुःखों को नष्ट करनेवाले (**आश्विना**) विद्वान् शिक्षक और उपदेशक! (**वाम्**) आप दोनों का (**का**) कौन (**उपमतिः**) उपमान (**भूत्**) होता है, आप दोनों (**कया**) किस प्रकार (**नः**) हमें (**आ, गमथः**) प्राप्त होते हैं और (**वाम्**) आप दोनों के (**अभीके**) समीप में (**कः**) कौन (**महः**) बड़ा कार्य (**चित्**) भी (**त्यजसः**) त्यागने-योग्य है? आप दोनों (**ऊती**) रक्षण-क्रिया से (**नः**) हमारी (**उरुष्यतम्**) रक्षा करो।।

भावार्थ- अपने ज्ञान और उपदेश से अज्ञान, अविद्या, और दुःखों को नष्ट करनेवाले विद्वान् शिक्षकों और उपदेशकों के समीप जाकर उनसे शिक्षा और विद्या ग्रहण करनी चाहिए तथा उनका सब प्रकार सम्मान और उनकी सेवा करने चाहिये। विद्वानों का सम्मान और उनकी सेवा करने से ही मनुष्यों को उत्तम शिक्षा और विद्या प्राप्त होती हैं। संसार में उत्तम शिक्षा और विद्या से ही सब सुखों की प्राप्ति होती है।

काव्यरूपान्तरण-

हे अनुपम शिक्षक, उपदेशक !
दुःख दोष अज्ञान हरो ।
जीवन में जिससे सुख होवे,
प्रस्तुत वह विज्ञान करो।।

डॉ. वेद प्रकाश, मेरठ

■

सर्वोपरि सत्ता (Supreme Power) ?

- लेखिका- डॉ॰ कंचन कुमारी गुजरात

प्रिय बच्चों,

आशा है तुम्हारी पढ़ाई और अन्य दिनचर्या ठीक चल रही होगी। मेरे मन में एक शंका उठ रही है। मैं पत्रों में और आपसे बातचीत करते समय प्रायः ईश्वर के बारे में चर्चा करती रहती हूँ। क्या तुम्हें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास है भी या नहीं? जब आप छोटे थे, तब हमारी अनेक बार ईश्वर के विषय में चर्चा होती रहती थी। न जाने बचपन की वे बातें तुम्हें याद हैं या भूल गई हैं? यह भी हो सकता है कि मित्रों के साथ रहते हुए, उनसे प्रभावित होकर आप ईश्वर को एक कल्पना ही समझते रहो। आओ, जैसा कि मैंने पिछले पत्र में लिखा था, इस पत्र में इसी विषय पर चर्चा करते हैं कि ईश्वर नाम की कोई सर्वोपरि सत्ता है भी या नहीं?

मेरे बच्चों! अनेक बार बहुत सारी बातों को हम केवल इसलिए मान लेते हैं कि परिवार और आस-पास के लोग उन्हें मानते हैं। उनके प्रभाव में आकर हम स्वतन्त्र रूप से कुछ सोच-विचार नहीं करते । जैसा वे कहते हैं, वैसा ही मानते और करते चले जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें स्वतंत्र रूप से हर विषय पर तर्कपूर्वक चिन्तन करके ठीक निर्णय को अपने मन में बिठा लेना चाहिए। फिर उसके असली स्वरूप के बारे में जानकर उसके अनुसार ही अन्य कार्य करने चाहिए। इससे व्यक्ति का हर परिस्थिति में विश्वास दृढ़ बना रहता है और वह कभी डगमगाता नहीं ।

बच्चों! संसार में आपको जो पदार्थ और वस्तुएँ दिखाई देती है या आपके अनुभव में आती हैं, उनकी सत्ता को तो आप आराम से स्वीकार कर लेते हैं। उन वस्तुओं के स्वरूप को भी आप अच्छी तरह जान और समझ लेते हैं। परन्तु जो पदार्थ आपको दिखाई ही नहीं देते अथवा आपके अनुभव में भी नहीं आते, उनको मानने और समझने में आपको अवश्य कठिनाई हो सकती है। ऐसे विषयों में ही अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ और पाखण्ड भी फैल जाते हैं। ईश्वर भी एक इसी प्रकार की सत्ता है। अतः हमें तर्क और युक्ति से ही ईश्वर की सत्ता के बारे में विचार करना चाहिए। पत्र सं.-2 में मैंने मृत शरीर के प्रसंग में आत्मा की सत्ता के साथ-साथ ईश्वर या परमात्मा के बारे में भी संकेत से उल्लेख किया था। ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, सच्चिदानन्द, शिव, ब्रह्मा, गॉड, अल्लाह आदि अनेक नाम उसी सत्ता के लिए

प्रयोग में आते हैं। चर्चा के समय हम किसी भी नाम का प्रयोग कर सकते हैं।

आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि जब कोई पदार्थ प्रत्यक्ष रूप से (सामने) दिखाई नहीं देता, तो हम अनुमान द्वारा या दूसरे साधनों (किताबों को पढ़कर, किसी के मुख से सुनकर आदि) से भी उसके बारे में जान सकते हैं। जैसे- तुम अपने कॉलेज में पढ़ने के लिए गये हुए थे। वापिस जिस पर एक बहुत सुन्दर रंगीन चित्र बना हुआ था। देखते ही आपकी दृष्टि अवश्य कोई बहुत अच्छा कलाकार होगा, जिसने यह बनाया है। आपके मित्र के वापिस आने पर आपने उससे पूछा कि क्या वह चित्र उसने बनाया है? उसने उत्तर दिया कि नहीं, मैंने तो नहीं बनाया । तब आप सोच में पड़ गय कि कमरे में कौन-सा चित्रकार आया होगा, जो इतना सुन्दर चित्र बना कर रख गया? उस समय यदि आपका मित्र यह कहे कि तुम क्या सोच में पड़ गये हो? यह चित्र तो किसी ने भी नहीं बनाया । यहाँ ये सब रंग, ब्रुश आदि पड़े थे, उनसे यह चित्र अपने आप ही बन गया है। तब आप क्या उत्तर दोगे? यही न कि 'तुम पागल हो गये हो? क्या अपने आप भी कभी चित्र बन सकता है? ये रंग, ब्रुश आदि तो सभी जड़ हैं, हिल-डुल नहीं सकते। किसी भी हालत में चित्र का अपने आप बनना तो संभव नहीं है। कोई न कोई चेतन मनुष्य जो कलाकारी भी जानता है, अवश्य वही इसे बना सकता है। यदि रंग को शीशियाँ खुल कर गिर भी गई होतीं, तो भी ऐसा सुन्दर और व्यवस्थित चित्र नहीं बन सकता था। तब तो वे रंग ही आपस में घुल-मिल जाते। और उन शीशियों को गिराने वाला भी तो कोई जानदार प्राणी ही होता। इस प्रकार, आप चित्र को देखने पर निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इस चित्र को बनाने वाला काई न कोई चित्रकार तो अवश्य ही है। इसे अनुमान द्वारा जानना कहते हैं।

ठीक इसी प्रकार, इस संसार को देखकर भी हमें यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि इसे बनाने वाला कोई न कोई तो अवश्य होगा। यदि कोई कहे कि नहीं, यह अपने आप ही बन गया है, तो यह बात उसी तरह असमभव है, जिस प्रकार चित्र का अपने आप बनना। बच्चो, इस निश्चित नियम को सदा याद रखो कि **जहाँ भी कोई कार्य, रचना या गुण पाये जाते हैं, वहाँ उसका कर्ता, रचयिता या गुणी भी अवश्य होगा। बिना किसी चेतन कर्ता के किसी भी कार्य का होना असम्भव है।** इस संसार में बहुत कुछ वस्तुएँ तो हम जैसे मनुष्यों द्वारा ही बनाई जाती है। उन सबको तो आप जानते ही हैं। मोटे तौर पर मकान, गाड़ियाँ, मशीनें, वायुयान, वस्त्र, बर्तन, टेलीविजन आदि-आदि अनगिनत वस्तुएँ

इन्सान बना सकता है और बनाता भी है। यदि कोई कि नहीं, ये सब तो अपने आप बन गई हैं, तो आप कभी भी इससे सहमत नहीं हो सकते। यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि जिन पदार्थों जैसे- लोहा, मिट्टी, लकड़ी, पानी, अनाज, पेड़-पौधे आदि से ये सब वस्तुएँ बनाई जाती हैं, उन्हें तथा जिन पृथ्वी, आग, हवा, सूर्य, चाँद, अनगिनत ग्रह, उपग्रह आदि लोक-लोकान्तरों के आश्रय मनुष्य जीवित रहता हैं, उनको वह स्वयं नहीं बना सकता। प्रश्न उठता है कि उन्हें किसने बनाया होगा? आप भी जानते हैं कि किसी इन्सान में सामर्थ्य नहीं, जो किसी पेड़ के एक पत्ते को भी उसी रूप में बनाकर दिखा दे। यहाँ तक कि करोड़ों वैज्ञानिक मिलकर भी एक गेहूँ के दाने को नहीं बना सकते। वे इन सब बने हुए पदार्थों का विश्लेषण तो कर सकते हैं कि उनमें उन परमाणुओं को न तो बना सकते हैं और न उस रूप में मिला ही सकते है। हम गेहूँ के दाने को भूमि में बो तो सकते है, परन्तु उसी समय उसमें से पौधा बनाकर गेहूँ नहीं लगा सकते।

बच्चो, आप अपने शरीर को ही देख लो। आपने कभी सोचा कि आप खाते क्या हैं और उसका बनता क्या है? आप और हम जो कुछ भी खाते हैं अच्छा या बुरा, उस सबसे ही रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य बनते हैं और व्यर्थ का अंश मल और मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। क्या किसी मनुष्य या उसकी बनाई हुई मशीन में ऐसी सामर्थ्य है, जो इस कार्य को कर सके? यह कार्य तो कोई अदृश्य सत्ता ही कर रही है। एक दूसरा उदाहरण लेते हैं। डाक्टर लोग बताते हैं कि सेब, अनार आदि खाने से शरीर में रक्त बनता है। आप ही बताओ क्या संसार में कोई ऐसी मशीन या वैज्ञानिक है, जो सेब या अनार में से रक्त की एक बूँद भी बना कर दिखा दे? केवल शरीर की मशीनरी में ही तो यह व्यवस्था है। किसने बनाया यह शरीर? और यह सब सुन्दर व्यवस्था कौन कर रहा है? क्या कोई जानता है कि वह कौन-सा-मसाला है, जिससे हमारे शरीर की त्वचा बनी है। अच्छा, एक चींटी को ही देखो। कैसे उसका शरीर तीन भागों में बँटा है? इतनी बारीक सूक्ष्म टाँगे, किसने और कैसे बनाई? ये अनगिनत सौर-मंडल कहाँ समाये हैं और कैसे बन रहे हैं? सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि विविध ग्रह-नक्षत्रों की निश्चित और व्यवस्थित गति कैसे और किसने निर्धारित की है? ये सब कभी आपस में टकराते नहीं। कैसे दिन और रात निर्धारित रूप से बन रहे हैं? जरा ब्रह्माण्ड की ओर नजर डालों, यह सब सुन्दर व्यवस्था कौन बनाए हुए है? मनुष्य एवं अन्य जीव-जन्तुओं की प्रजनन प्रक्रिया सारे संसार में एक-सी ही कैसे चल रही है? बच्चो! क्या कभी आपने इन बातों पर ध्यान से विचार किया है? विचार करते-करते दिमाग चकरा जाता है। इसके विपरीत, अपने आप बनने वाले पदार्थों में सब जगह इस प्रकार की एक-सी

व्यवस्था नहीं देखी जाती । इस तरह के अनेक उदाहरण आपको अपने आस-पास मिल जायेंगे। ये तो मैंने आपको समझाने के लिये केवल थोड़े-से उदाहरण बताये हैं।

अब दूसरे पक्ष पर विचार करते हैं। मनुष्य-जीवन की ओर देखो। कोई है संसार में जो चाहता हो कि युवावस्था समाप्त हो जाए, मैं बूढ़ा हो जाऊँ और मौत आ जाए। कोई स्वयं नहीं चाहता और न ही कर रहा है, पर फिर भी सबके साथ घटित हो रहा है। कौन कर रहा है यह सब? हम मनुष्य या कोई वैज्ञानिक यह सब कर नहीं सकता, पर सब हो रहा है। कोई तो है ऐसी चेतन शक्ति जो यह सब कर रही है। जैसे एक छोटा-सा चित्र अपने आप नहीं बन सकता। कोई कलाकार ही उसको बना सकता है, उसी प्रकार, यह अद्भुत संसार भी कोई अद्भुत कलाकर ही बना सकता है। उसको ही हम ईश्वर (सबका स्वामी), परमात्मा (सबसे बड़ी आत्मा), परमेश्वर (सबसे बड़ा स्वामी) आदि नामों से कहते हैं।

अच्छा, शान्त मन से इन सब बातों को सोचकर बताना कि आपके साथ-साथ आपके मित्रों को भी ईश्वर की सत्ता में विश्वास हुआ या नहीं ?

आपकी माता ।

पेज 26 का शेष...

आने वाली पीढ़ी को हम अंधेरे को चीरने, अन्याय के खिलाफ खड़े होने, अशान्ति की जगह शान्ति लाने, हिंसा की जगह अहिंसा स्थापित करने, घृणा की जगह प्रेम बाटने, झूठ के स्थान पर सत्य को स्थापित करने और अन्याय की जगह न्याय का डंका बजाते हुए देख सकें, यही आशा हमें करनी चाहिए। तभी सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् पर आधारित समाज का निर्माण होगा और तब हम कह सकेंगे-

सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा

और उस वैदिक नाद का स्वर गूंजेगा जिसमें कहा गया है-

"हम धरती हमारी मां है, हम धरती के पुत्र है।"

यज्ञ जिन्दगी को जीने के योग्य बना देता है।
अपने शुभ कर्मों का उपभोग्य बना देता है।
दान, देवपूजा, संगतिकरण नाम है यज्ञ का।
सबको, सबका भाग मिले, यही है मर्म यज्ञ का।।

"अथर्ववेद में राजनीति एवं विज्ञान"

लेखक- कमल किशोर यादव, मानसी, खगड़िया

वेद संसार के समस्त ज्ञान का मूल है। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद मानव जीवन के लिए सदा से ही उपयोगी रहा है। 1. महाराज मनु ने "सर्व ज्ञान मयो हि स:" कह-कर समस्त ज्ञान-विज्ञान का भंडार माना है। वेदों में ईश्वरोपासना, सदाचार, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, शिक्षा, यज्ञ, कृषि, राज व्यवस्था, व्यापार, पशुपालन उद्योग, व्यक्तिगत पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन तथा आदर्श गृहस्थ इत्यादि विषयों का पूर्णयतन मौजूद है। अथर्वेद के पृथ्वी सूक्त में मानव समाज का सम्पूर्ण विश्व के मानव इतिहास का प्रथम राष्ट्रगान है, एवं राष्ट्र क्या है? कौन-कौन से गुण राष्ट्र को धारण करते हैं इसका विशद वर्णन है।

हमारे देश में राज्य व्यवस्था जब तक वेदों के अनुसार चलती रही तब तक भारत विश्वगुरु कहलाता था। वेदों से विमुख होने के पश्चात् हम पतन की ओर गिरते चले गए। हमारा देश हजारो वर्षों से राजनीतिक दासता का दंश भुगत रहा। शक, हूण, पठान, तुर्क, अंग्रेजों तथा अन्य कईयों ने यहाँ की अपार धन-सम्पदा लूट-लूट कर अपने मूल देशों को लौट गए।

आज जब भौतिकता की चार-चिक्य में सभी लोग पाश्चात्य संस्कृति की ओर तेजी से होड़ लगाये हुए हैं जिससे प्रकृति के विपरीत आचरण कर मानवीय मूल्यों को शत-प्रतिशत नष्ट कर रहे हैं अशिक्षा, अज्ञानता, अभाव, अव्यवस्था कुरीति, कुव्यवस्था, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, असमानता, आदि का प्रादुर्भाव हो गया है। खुलेआम अवसरवाद, पूँजिवाद, सामन्तवाद आदि का प्रहार मानव के अनुकूल बनाये गए प्रकृति के अपार सम्पदा पर चौतरफा हमला कर नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा है चाहे वह पर्यावरण के क्षेत्र हों, राजनीतिक क्षेत्र में हों, शिक्षा, चिकित्सा तमाम मानवीय उपयोगी क्षेत्र को प्रभावित ही नहीं बर्बाद किया जा रहा है।

ऐसी परिस्थिति में देश ही नहीं, दुनिया को सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित करने एवं स्थायी रूप से रखने हेतु हमें वेद की ओर आवश्यक रूप से लौटना होगा। अन्यथा इस संसार का सुख एवं शांति देने में दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जैसा कि
2. महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने आर्य समाज की तृतीय नियम में यह उद्घोष किया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

3. अथर्वेद का बारहवाँ काण्ड ''पृथ्वी सूक्त'' में ''माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः''। अर्थात् पृथ्वी हम मानवों की माता है और हम पृथ्वी माता के पुत्र हैं। वैदिक साहित्य में राज्य और राष्ट्र एक ही है। मातृभूमि ही राष्ट्र है और राष्ट्र ही राज्य है। अंग्रेजों के राजनीतिक विज्ञान की तरह राज्य और राष्ट्र दो वस्तु नहीं है।

4. ''सत्यं वृहद्धतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथ्वीं धारयक्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्त पल्युरू लोकं पृथ्वी नः कृणोतु ।।''
12/1/1 अथर्वेद

इस मंत्र में दो तथ्यों का निरूपन्न हुआ है- वे गुण या वे विशेषताएँ जो किसी देश, राष्ट्र को धारण करती है। यहाँ आठ राष्ट्रीय तत्वों का परिणयन किया हुआ है। जो राष्ट्र को धारण करते हैं। दूसरा तथ्य यह है कि जो राष्ट्र को धारण करने वाले तत्वों को मातृभूमि महान रूप में प्रगट करती है।

I. सत्य- बच्चों को और उच्च वर्ग के विद्यार्थियों को, सम्पूर्ण समाज को सत्य के सत्य के प्रति इमानदारी के प्रति, निष्ठावान बनाना, राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है। राष्ट्र के उत्पादन शुद्ध और मिलावट रहित हों, राष्ट्र की गुणवत्ता पर अन्य राष्ट्र और संसार के लोग पूर्ण रूप से भरोसा कर सकें।

II. वृहत्त- राष्ट्र की परम्परायें और संकल्प महान हों साथ ही राष्ट्र उद्यमवाला और मनुष्य उद्यमी परिश्रमी हों। जिस राष्ट्र में उद्योग, उद्यम, व्यवसाय और उच्च संकल्प होगा वह सदा उन्नतशील, स्वतंत्र अपने पैरों पर खड़ा रहेगा किन्तू दूसरे राष्ट्रों से ऋण उधार नहीं लेना पड़ेगा।

III. ऋत- ऋत अर्थात प्रकृति के शाश्वत नियम है। ऐसे नियम नित्य हैं और सब जगह लागू होते हैं। प्रकृति और राष्ट्र के कार्यों में सामंजस्य होनी चाहिए। जल-थल-वन-कृषि-भूमि का दोहन, खनिज का उत्पादन, पर्यावरण शुद्धता सभी में पूर्ण सामंजस्य एवं समन्वय होनी चाहिए।

IV. उग्रम- तेज तेजस्विता- है। राष्ट्र के नागरिक तेजस्वी हों, विद्या, बुद्धि में तेज हों, हिजड़ें, निवीर्य, डरपोक नपुंसक राष्ट्र की कोई महिमा नहीं होती। दूसरे राष्ट्र ऐसे निर्बल राष्ट्रों पर अधिकार करके इसकी प्राकृतिक सम्पदा का दोहन कर लेते हैं और तेजस्विता हीन राष्ट्र दरिद्र होकर अपमान का विष पीते हैं।

V. दीक्षा- दीक्षा का अर्थ है व्रत ग्रहण और क्रियात्मक अभ्यास। शासन सुरक्षा, सुव्यवस्था, न्याय सभी का राष्ट्रीय उद्देश्यपूर्ण हो। कुल का अर्थ ये हुआ कि सारा सम्पूर्ण राष्ट्र अपने राष्ट्रीय लक्ष्य को पूर्ण करने में तत्पर हो जाएँ।

VI. तप- विलासिता व आरामतलबी का उल्टा है। जो विलास या आराम चाहेगा, वह न तप

करेगा और न लक्ष्य या उद्देश्य को पूर्ण कर सकेगा।

VII. यज्ञ- यज्ञ का अर्थ है- 1. देवपूजन अर्थात पूज्यों, विद्वानों, वृद्धों आदि का भली प्रकार सम्मान। संगतिकरण- राष्ट्र के सभी अंगों में शासन, सुव्यवस्था, सुरक्षा, न्याय कृषि-उद्योग, आदि में सभी में समन्वय एवं सामंजस्य बनी रहे। 3. दान- यज्ञ का महत्वपूर्ण अंग दान है। राष्ट्र को कोई भी अंग किसी दूसरे अंग के मूल्य पर उन्नति न करें बल्कि एक-दूसरे से समन्वय, सहयोग और दान की भावना से परस्पर व्यवहार करें। कृषि के मूल्य पर उद्योग की उन्नति अच्छी नहीं है। इस प्रकार देश का कोई भी अंग चाहे कृषि हो या उद्योग, शासन हो न्याय, आन्तरिक सुरक्षा या बाह्य सुरक्षा, सीमाओं की रक्षा सभी में आपसी समन्वय और सामंजस्य स्थापित रहे।

राष्ट्र का भूत अतीत उस राष्ट्र का इतिहास है। इतिहास की रक्षा राष्ट्रीय गौरव के लिए आवश्यक है और यही तत्व राष्ट्र के भविष्य को भी चमका देते हैं। राष्ट्र स्वाभिमान राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक होता है।

5. ''आददु। कुविददु। शतं या भेषणानि ते। तेषामसि त्वमुत्तममनास्त्रामरोणम्।।'' अथर्वेद । 2/3/2 संसार की सब औषधियों में क्लेश-नाशक और-निवर्त्तक शक्ति का देने वाला वही औषधियों का औषधि ब्रह्म है।

6. ''ईर्ष्यायाध्रासिं प्रथमं प्रथमस्या उत्तपराम्। अग्नि हृदयं शोकं तं ते निर्वाषयामसि।। अथर्वेद।

मनुष्य दूसरों की वृद्धि देखकर कभी इर्ष्या न करें। अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति जानें। इस प्रकार राष्ट्र को धारण करने एवं उसे व्यवस्थित रूप से चलाने, सुरक्षित रखने तथा निरंतर आगे बढ़ने-बढ़ाने हेतु अथर्वेद में व्यापक रूप में निर्देश मौजूद है।

अथर्वेद में ज्ञान-विज्ञान का विश्वकोष- आध्यात्मिक विद्याओं के साथ-साथ अनेक लौकिक विद्यायें भी इस वेद का वर्ण्य विषय बनी है। विद्वानों का मत है कि अथर्वेद निरूपित ज्ञान विज्ञान का यह भंडार इतना वैविध्यपूर्ण तथा प्रागाढ्य है कि उसकी विस्तृत व्याख्या तथा आलोचना सामान्य व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। उचित यह होगा कि अथर्वेद वेदान्तरगर्त संकेतिक ज्ञान-विज्ञान के जानकार विशेषज्ञों का एक शोध पटल गठित किया जाए तथा उनके शोध कार्य के लिए सभी सुविधाएँ दी जाएँ।

शरीर सम्बन्धी विज्ञान- अथर्वेद में यत्र-तत्र हमारे शरीर को रोगी तथा पीड़ित करने वाली व्याधियों का उल्लेख मिलता है साथ ही विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों तथा रोग निवारण के उपायों की चर्चा यहाँ आयी है।

स्पर्श चिकित्सा- चौथे कांड के तेरहवें सूक्त का छट्ठा मंत्र इसी स्पर्श चिकित्सा का संकेत

देता है।

7. ''अयं में हस्तो भवानयं में भगवन्तर: । अयं में विश्व भेषणोऽयं शिवाभियर्शन:।। अथर्वेद । 4/13/6

यह मेरा बायां हाथ भाग्यवान है और दाहिना हाथ अधिक सौभाग्यशाली है। यह मेरा हाथ सर्व रोगनाशक है तथा स्पर्श में सुखदायक है। इस प्रकार हस्त स्पर्श तथा वाणी से रोगी के कष्ट को दूर करने में या कम करने का प्रयास किया जाता है। परामर्श चिकित्सा- रोगी को स्वस्थ करने तथा उसके मन में दृढ़ उत्साह जगाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें स्वस्थ होने की आशा का संचार किया जाए।

8. ''मर बिर्येन मस्थ्यिसि जरदष्टिं कृणोमित्वा'' अथर्वेद । 5/30/8

इस रोग से डर मत। तू मरेगा नहीं मैं तुझे दीर्घायु (वृद्धावस्था) तक पहुँचाऊंगा।

विष निवारण चिकित्सा- विष निवारण के दो मंत्र छठे कांड के 12वें सूक्त में आये हैं। विषम जड़ का नाश कर्णशूल, यक्ष्मा (तपेदिक) जुड़ी का बुखार, पीलिया (खाँसी) अनेक रोगों के कारण तथा निवारण की चर्चा नौवें काण्ड के आठवें सूक्त में आयी है।

9. ''यक्ष्माणां सर्वेषां विषुं निरवोचं त्वत्''। अथर्वेद । 9/8/11, 12

क्षय रोग से रोगी को सुक्त करने की बात कहते हैं, वस्तुत: इन मंत्रों पर विस्तृत शोध होनी आवश्यक है। सर्प विष नाश की विद्या-दशम् काण्ड का चौथा सूक्त साँपों के काटने का इलाज बताता है। सर्प विष की घातकता सर्वविदित है। औषधिविज्ञान, अथर्वेद में रोग निवारक औषधियों का अनेकत्र विवरण मिलता है। सप्तम् काण्ड के 64वें सूक्त में अपमार्ग औषधि के लाभ बताये हैं। वनस्पति विज्ञान, काम विज्ञान, मनस्तव तथा प्राण विज्ञान परमात्मा ही प्राण है। अथर्वेद में मनोविज्ञान भी है।

10. ''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयी:'' अथर्वेद ।

मानव मन संसार का आठवाँ आश्चर्य है। स्वस्थ चिंतन तथा स्वस्थ मन:स्थिति से दु:स्वपनों पर नियंत्रण किया जा सकता है। गृहस्थ के सदस्यों में सौमनस्य तथा सौहार्द तभी संभव है जो वे न केवल बाह्य दृष्टि से अपितु मानसिक दृष्टि से भी एकसूत्र बंधे रहे। उनके चिंतन तथा मनन में एकता होनी अपेक्षित है। अथर्वेद में राजधर्म या राजशास्त्र का व्यापक विवरण-अथर्वेद में राजा तथा एकता होनी अपेक्षित है। अथर्वेद में राजधर्म या राजशास्त्र का व्यापक विवरण- अथर्वेद में राजा तथा राज्य प्रशासन से सम्बन्धित अनेक सूक्त आते हैं। जिनके मंत्रों से प्रेरणा तथा मार्गदर्शन लेकर

हम अपनी राज्य प्रणाली को सर्वोत्तम तथा सर्वहितकारी बना सकते हैं। चौथे काण्ड का आठवाँ सूक्त राजधर्म विषयक है- राज्य-शासन में प्रजातांत्रिक पद्धति श्रेष्ठ है। वेद कहीं भी स्वच्छंदता, स्वेच्छारिता, एकतंत्र तथा तानाशाही को प्रश्रय नहीं देता। सातें काण्ड के प्रथम में सभा तथा समिति को प्रजापति (समस्त जनता) को दो पुत्रियाँ कहा गया है। अर्थात् समस्त प्रजा प्रजातांत्रिक प्रणाली से इन सभाओं और समितियों का निर्वाचन करती है जो आगे चलकर 'सभापति' रूपी राजा को चुनती है। 'सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने'। अथर्वेद के सातवें काण्ड के 12वें सूक्त के तीसरे तथा चौथे मंत्र में निर्वाचित सभापति (राजा) सभासदों का नियंत्रण कैसे करें उन्हें अनुशासनबद्ध कैसे रखें, यह बताया है। निर्वाचित राजा अपने सभासदों से कहता है।

11. ''यद् वो मनः परगतं यद् बद्धमिह वेहवा। तद वः आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥'' अथर्वेद । 7/12/4

भाव है- ''यदि संसदीय कार्य करते, घूरते कदाचित तुम्हारा मन उचट जाए, इधर-उधर के अप्रासंगिक में भटकने लगे तो मेरा यह कर्तव्य बनता है कि मैं तुम्हारे मौलिक कर्म (संसदीय कार्य) में नियोजित करूं।

संसदीय कर्मों को इस प्रकार कुशलता से संचालित करने वाला राजा (सभापति) सर्वदा प्रशंसित होता है। इस प्रकार वेद में मानव उपयोगी समस्त ज्ञान का भंडार है जैसे युद्ध विद्या, धातु विज्ञान, मणि विज्ञान, दर्भ की उपयोगिता, कृषि विज्ञान, पशुपालन की विद्या, खगोल विज्ञान, काल विज्ञान आदि भरे पड़े हैं।

●

पेज 26 का शेष.....

ये इतने वैज्ञानिक और प्रासंगिक हैं कि यदि इनका विधि-विधान से पालन किया जाए तो और कोई कारण नहीं कि कर्तव्यनिष्ठ, बलशाली, तेजस्वमी, चरित्रवान और प्रज्ञावान सन्तान का जन्म न हो। आवश्यकता इस बात की है परिवारों में संस्कारक्षम वातावरण एवं मूल्य आधारित परिवेश की संरचना की जाए।

एक सही मायने में सम्पूर्ण व्यक्तित्वशाली मानव का निर्माण बिना संस्कार के न सम्भव था, न है और न होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए जब परिवारों में नए सिरे से संस्काराधारित कार्य-योजनाएं बनाई जाएंगी तो निश्चित ही मनुष्य से मानव बनने की संकल्पना एक न एक दिन पूरी होकर रहेगी। तब ये परिवार केवल भौतिक उन्नति के लिए नहीं होंगे बल्कि स्वांगीण विकास इनका लक्ष्य होगा। हम कल्पना कर सकते हैं जब विश्व समाज संस्कारों, मानवीय मूल्यों एवं गुणों से आप्लावित हो जाएगा कहीं दूर-दूर तक दुख, कष्ट, अशान्ति, अन्याय, शोषण, गैर बराबरी, अत्याचार, व्याभिचार और कपट व विश्वासघात के कोई चिन्ह दीख नहीं पड़ेंगे।

सम्पूर्ण विश्व में शान्ति का एकमात्र उपाय-यज्ञ (हवन)

लेखक- गंगा शरण आर्य, नई दिल्ली

पंचमहायज्ञों में द्वितीय ''देवयज्ञ'' अर्थात् अग्निहोत्र है इस यज्ञ के माध्यम से सम्पूर्ण सृष्टि में जलवायु के शुद्ध होने पर सभी जीवधारियों का कल्याण होता है संसार में उत्पन्न सभी प्राणी तभी स्वस्थ व सुखी रह सकते हैं जब पृथिवी, जल, वायु, आकाश ये सारे तत्व (जिनसे हमारा जीवन चलता है) प्रदूषित न हों किन्तु आज ये सारे तत्व प्रदूषित हो चुके हैं अग्नि कीटाणुनाशक है। लू में रोगों के कीटाणु व मच्छर आदि मर जाते हैं ठीक इसी प्रकार अग्नि तत्व पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि करता है और शुद्धिकरण करने के लिए उसे सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी (मनुष्य) के सहयोग अग्नि तत्व पृथ्वी, जल, वायु और आकश की शुद्धि करता है और शुद्धिकरण करने के लिए उसे सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी (मनुष्य) के सहयोग की आवश्यकता है जो वह सृष्टि में उत्पन्न पुष्टिकारक, सुगंधित, रोग निवारक, औषधीय गुण युक्त पदार्थों को यज्ञ के माध्यम से अग्नि को समर्पित कर दें तो यज्ञाग्नि समस्त ब्रह्माण्ड के प्रदुषण को मिनटों में दूर कर दे मनुष्य ने टॉनिक तो अनेक बना लिए परन्तु ऐसा टॉनिक जो पेड़, पशुओं, पक्षियों, आदि सबका कल्याण करे वह केवल और केवल 'देवयज्ञ' अर्थात् अग्निहोत्र ही है। यह आप किसी यज्ञ शाला के समीप के पेड़-पौधों का निरीक्षण करके देख सकते है।

मानव परमपिता परमात्मा की श्रेष्ठतम एवं प्रियतम कृति है। जिस प्रकार माता-पिता नवजात शिशु के आगमन से पूर्व उसके सभी साजो-सामान व सुविधाओं की तैयारी करते हैं उसी प्रकार ईश्वर ने भी अपने मानवीय पुत्र के सुख के लिए सृष्टि को फल-फूल, मेवे, वनस्पतियों इत्यादि से सुसज्जित किया है और अपनी लाडली संतान इस मनुष्य को नानाविध अनमोल रत्न दिए। किन्तु ईश्वर की यही लाडली संतान आज इस ईश्वर प्रदत्त स्वर्ग वातावरण को नरक बनाने पर तुली है जिसके कारण पर्यावरण एक बड़ी चिन्ता का मुद्दा बन गया है। कहीं जमकर बारिश हो रही है, कहीं आकाश आग उगल रहा है, कहीं सूखा है, कहीं बाढ़ है, कहीं किसान अपनी जमीन पर दो-दो नहीं तीन-तीन फसल ले रहे हैं, कहीं किसान कर्ज के बोझ से आत्महत्या कर रहे हैं। कितनी ही नदियां जो सदा जल से परिपूर्ण रहती थी, या तो वे सूखती जा रही हैं या गंदे नालों में तब्दील

हो रही हैं। जो धरती कभी सोना अगलती थी वह धीरे-धीरे बंजर व ऊसर हो गई है। जिन

पहाड़ों पर घरों में पंखे की आवश्यकता भी कभी न पड़ती थी आज वहाँ वातानुकूलित लगने लगे हैं। शहरों व गावों में तापमान जितनी तेजी से ऊपर चढ़ता है वह सब इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य ने जो अपनी ऐछिक सुख-सुविधा के लिए विकास की अन्धी दौड़ शुरू की है उसमें उसने प्रकृति की पूरी तरह से अनदेखी की है। मनुष्य जाति आज अपने अस्तित्व को खतरे में डाल रही है। प्राकृतिक जीवनशैली के विनाश में लगकर मानव नहीं जानता कि जिस विज्ञान के माध्यम से वह विकासोन्मुख होना चाहिता है वह प्रकृति माँ भी मानव का कल्याण करने में सदैव तत्पर रहती है। वह प्रकृति से सिर्फ लेता है, देता नहीं। वह पेड़ काटता है, लगाता नहीं। वह जमीन से पानी निकालता है, बारिश के पानी को रोकने का इंतजाम नहीं करता। वह बड़े-बड़े कारखाने लगाता है पर उनसे निकलने वाले रसायनों की ठीक से निकासी का कोई प्रबन्ध नहीं करता। उसका मकसद प्रकृतिक के कीमत पर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना है जिससे वह अपनी संतान को बहुत बड़ी संख्या में धन तो दे सकेगा, लेकिन वह उसे प्रकृति के कहर से कैसे बचा सकेगा। आने वाले समय में अर्थात् भविष्य में (वर्तमान में जो नींव पर्यावरण की रखी जा रही है के अनुसार) तेजाबी वर्षा होगी, नदियों

में जल के स्थान पर मल होगा, मनुष्य को जगह-जगह पर थोड़ी-थोड़ी देर के अंतराल पर आक्सीजन बूथ से आक्सीजन लेनी पड़ेगी। अतः उपरोक्त दुष्परिणामों से अपनी आने वाली संतान को बचाने के लिए क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम पेड़ों को काटने से बचाएं, नदियों को गंदा होने से बचाएं। इसलिए यदि हमने प्रकृति से कुछ लिया है तो बदले में उसे कुछ देना भी हमारा ही कर्तव्य है ताकि संसार में रहते हुए हम प्राकृति आपदाओं का शिकार न बने। जब-जब मनुष्य प्रकृति से छेड़छाड़ करता है तब-तब विनाश के कगार पर आ खड़ा होता है। लेकिन हमारा सौभाग्य है कि हमने भारतभूमि पर जन्म लिया, ऐसी पवित्र धरा पर अपनी आँखें खोली जहाँ बालपन से ही हमें हमारे ऋषि-मुनियों ने, महर्षियों ने, पूर्वजों ने संस्कार के माध्यम से ही सही, पर हमें यज्ञों से जोड़ रखा है और यज्ञ के महत्व को समय-समय पर हमें समझाने का प्रयास किया है और हमें बताया जाता है (भले ही हम ध्यान न दें) कि वेद हमारे धर्मग्रन्थ है और हमारे जीवन के उपयोगी ज्ञान-विज्ञान वेदादिशास्त्रों में भरा पड़ा है। हमें उनसे लाभ उठाना चाहिए उनमें छुपे हुए रहस्यों को जानना चाहिए ताकि

हमारा ही नहीं संपूर्ण विश्व का कलयाण हो सके। तो यज्ञ कीजिए और देखिए कि किस प्रकार विश्व में (जहाँ आज चारों और अशांति का वातावरण है) शांति होती है।

सर्वप्रथम तो यज्ञ के महत्व को समझ लें कि यज्ञ क्यों करने चाहिए। आज से नहीं, सृष्टि के प्रारम्भ से ही अब तक कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ यज्ञ को किसी न किसी रूप में न किया जाता हो। भारतीय संस्कृति व सभ्यता और परम्पराओं से तो आप परिचित ही हैं कि यहाँ कोई भी कार्य बिना हवन-यज्ञ के नहीं किया जाता। इसके अलावा यवन देश के तत्त्ववेता 'प्लयूकी' ने आग को वायुशोधक माना है। चीन, जापान में होम को 'घोम' कहते हैं, ईरान के पारसी लोग हवन को भारतीयों की तरह करते आए हैं। वाशिंगटन की अग्निहोत्री यूनिवर्सिटी ''फाइव फील्ड पाथ'' नामक संस्था ने अग्निहोत्री यूनिवर्सिटी स्थापित करके अमेरिका जर्मन आदि अनेक पाश्चात्य देशों में यज्ञ के परीक्षण किए हैं। फाईव फील्ड पाथ अर्थात या, दान, तप, कर्म और स्वाध्याय, यह एकदम वैदिक नाम उनहोंने स्वीकार किया है। यहाँ तक कि जर्मनी में तो बर्थोल्ड मोनिका जेहले नामक जर्मन विद्वान तो यज्ञ की भस्म को अनेक रूप में चिकित्सार्थ प्रयोग करने का प्रचार करते हैं। चिल्ली के एण्डीज पर्वतों में एक विशिष्ट अग्नि मन्दिर अर्थात् यज्ञशाला तैयार की गई जहाँ सहस्रों व्याधियों से मुक्ति प्राप्त हो चुकी है। वेदों के अनुसार होम चिकित्सा संसार का अति प्राचीन विज्ञान है। अत: हम कह सकते हैं कि यज्ञ एक सार्वभौम सिद्धान्त है जिसे मनुष्य आज भूलता जा रहा है। विज्ञान के शिखर पर पहुँच कर भी इस विज्ञान से अनभिज्ञ है। यज्ञ के महत्व को जानते हुए भी अपने चारों ओर प्रदूषित वातावरण को शुद्ध न किया तो ऐसी जानकारी से क्या लाभ? यज्ञ क्यों करें? व्यर्थ में घी क्यों फूंके? फिर यज्ञों में मंत्र पाठ करने से क्या लाभ? समिधा आदि का प्रयोग क्यों करें? ऐसी बातें इसलिए की जाती है क्योंकि हम यज्ञ के महत्व को तो जानते हैं लेकिन उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर नहीं जानते। हम अंधेरे से बचना चाहते हैं। हमें पता है बिजली हैं पर जब तक बल्ब नहीं लगाऐंगे, रोशनी कैसी होगी? हम मानसिक शांति चाहते है इसलिए ऐ मानव! जो कुछ भी आपके पास है उसे परमार्थ में बांटो अर्थात् यज्ञ करो, यज्ञ के माध्यम से हमारे अन्दर पवित्रता की भावनाएं जन्म लेगी जिससे हमारे चित्त का पर्यावरण शुद्ध होगा और अशांति दूर होगी। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें वायु, जल, अन्न आदि की आवश्यकता होती है और यदि प्रकाश देने वाला सूर्य न हो, शीतलता, अन्न व औषध आदि में

जीवन शक्ति डालने वाला, रस भरने वाला चन्द्रमा न हो, बादल न हो, वर्षा न हों, ऋतुओं की अनुकूलता न हो, वृक्ष न हो, फल-फूल न हो तो हमारा जीवन कैसे चल सकता है। यज्ञ करने से ये शुद्ध होगें, इनके शुद्ध होने से हमारा जीवन भी शुद्ध होगा। ये दूषित होगे तो हमारा शरीर भी अस्वस्थ रहेगा जैसे आजकल यज्ञों के अभाव में स्थिति बनती जा रही है। अत: इस यज्ञ के माध्यम से इन जड़ देवताओं को शुद्ध करो। वे (माँ की तरह) तुम्हें शुद्ध व स्वस्थ रहने का आशीष देंगे। शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में ही कहा गया है। कि ''अग्निर्वे देवानाम मुखं'' सभी जड़ देवताओं का मुख अग्नि है। क्योंकि अग्नि में डाले हुए पदार्थ, पदार्थ विज्ञान के अनुसार कभी नष्ट नहीं होते अपितु रूपान्तरित होकर सूक्ष्म होकर लाखों गुणा शक्तिशाली हो जाते हैं। सूक्ष्म होकर अंतरिक्ष में फैल जाते हैं, व्यापक हो जाते हैं। अंतरिक्ष व द्युलोक में व्याप्त पर्यावरण को भी शुद्ध करने में सक्षम हो जाते हैं। इसलिए यजुर्वेद के 23वें अध्याय के 62वें मंत्र में कहा गया है कि ''अयं यज्ञो भूवनस्य नाभि:'' अर्थात् इस यज्ञ को भुवन की नाभि कहा है। जो पदार्थ अग्नि में डाला जाता है वह अति सूक्ष्म रूप धारण कर कल्याणकारी हो जाता है। उदाहरण स्वरूप चीनी के थोड़े से दानें यदि अग्नि में डाल दिए जाए तो भयंकर रोग टी.बी. के बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जायफल, गुग्ल, लौंग मिलाकर यज्ञ में सामग्री के रूप में प्रयोग करने से मच्छरों का प्रकोप समाप्त हो जाता है। साथ ही यज्ञ के पश्चात् अग्नि जब कोयलों की आग के समान रह जाए तब उसमें नीम की पत्तिया एवं तुलसी के पत्ते डालने पर उनसे जो धुआं उत्पन्न होकर रोग के विषाणु नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मुनक्का, किशमिश आदि फलों को सामग्री में प्रयोग करने से टाईफाइड के कीटाणु 30 मिनट में तथा अन्य रोगों के कीटाणु एक या दो घण्टे में नष्ट हो जाते हैं।

देखिए आजकल, कल कारखानों, मिलों फैक्ट्रियों व वाहनों, रेलों इत्यादि से निकलने वाली जहरीली गैसों को थोड़े से लाभ के लिए हम सहन कर रहें है तो बहुत अधिक लाभ पहुंचाने वाले यज्ञ को क्यों न करें। यज्ञ की पुष्टिकारक गैसों से 96% हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। ऐसा पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज के जीवाणु शास्त्रियों ने एक प्रयोग करने के बाद पाया, उन्होंने 36x22x10 घनफुट के एक हाल में एक समय का यज्ञ किया परिणाम स्वरूप 8000 घनफुट वायु में कृत्रिम रूप से तैयार प्रदूषण का 77.5 प्रतिशत हिस्सा खत्म हो गया। जर्मनी के एक वैज्ञानिक जो केमेस्ट्री, बॉटनी, मेडिसिन, रेडियोलॉजी के ज्ञाता तथा

जर्मनी विश्वविद्यालय में पढ़ाते भी है ने लिखा है कि "After I tested Agnihotra myself it seems that with Agnihotra you have a wonder weapon in our hands" अर्थात् स्वयं अग्निहोत्र का परीक्षण करने के बाद मैंने पाया है कि सचमुच अग्निहोत्र के आचरण द्वारा मानो आपके हाथ में एक अद्‌भुत शस्त्र आ जाता है (प्रदूषण के विरूद्ध)। इसी क्रम में वर्षा कराने हेतु भी भारत के कई वेद विज्ञानाचार्य व महानुभावों ने प्रयास किये जो सफल हुए। वृष्टि यज्ञ के सफल परीक्षण कैलीफोर्निया के मिस्टर हैडफिल्ड ने भी किए है। वे दावे के साथ कहते हैं कि मैं आकाश से पानी बरसा सकता हूँ लगभग 500 बार वे इस प्रकार के परीक्षण कर चुके है। वे यज्ञाग्नि में ऐसे-ऐसे पदार्थ डालते हैं जिनसे वाष्प सघन होकर बरसने लगती है। यज्ञ द्वारा पर्यावरण शुद्धि का सबसे बड़ा उदाहरण तो अपने 2 दिसम्बर 1984 के विश्व स्तर के समाचार पत्रों में पढ़ा ही होगा कि भोपाल में स्थित यूनियन कार्बाइड कारखाने उसे गैस रिसाव की खबर मिलते ही दो परिवार श्री एस. एल. कुशवाहा और श्री एस. राठौर ने अपने पूरे परिवार सहित यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया जिससे इन दोनों परिवारों पर हानिकारक गैसों का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। अतः सम्पूर्ण विश्व को प्रदूषण मुक्त करने व पर्यावरण संतुलन बनाए रखने, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आंधी तूफान आदि उपद्रवों की शांति का एकमात्र उपाय यज्ञ ही है। यज्ञ के माध्यम से सारे विश्व के आसुरी विचारों का दमन होगा और सर्वत्र अशांति फैली हुई है कहीं न कहीं मनुष्य मात्र ही उसके लिए उत्तरदायी है। जो स्वयं को दोषी नहीं समझते तो एक छोटी सी बात के माध्यम से समझ जाएंगे। संसार का प्रत्येक व्यक्ति मलमूत्र त्याग करता है, श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है। विभिन्न वस्तुओं के गलने-सड़ने का कारण है। धूम्रपान तथा दुर्गन्ध फैलाने के कारण यज्ञ न करने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति रूपी माँ का दोषी है। हमें अपने को दोषमुक्त करना होगा अन्यथा प्रकृति माँ अपना कहर बरसाना नहीं छोड़ेगी और उस कहर से बचने का, स्वयं को दोषमुक्त करने का विश्व शांति में सहयोगी बनने का एकमात्र उपाय यज्ञ है।

यज्ञ का अध्यात्मिक पहलु

यज्ञ का उद्देश्य केवल मात्र जलवायु को शुद्ध करना ही होता तो इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कहीं पर भी यांत्रिक प्रक्रिया द्वारा अग्नि जलाकर उसमें घृत एवं सामग्री को फेंककर, कर ली जाती। किन्तु यज्ञ का प्रयोजन केवल भौतिक ही नहीं अपितु आध्यात्मिक भी है जो

कि भौतिक लाभों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उनका संकेत संक्षिप्त रूप में यहाँ [illegible] कर रहा हूँ- यज्ञ में जिन वेद मन्त्रों से आहुति दी जाती है उनसे पूर्व 'ओ३म्' का उच्चारण किया जाता है जिसमें हमें ज्ञात होता है कि समस्त प्राकृतिक पदार्थों का आदि मूल परमेश्वर है, अर्थात् हमारे पास जो भी धन, बल, विद्या, उन सबका उत्पादक, रक्षक, धारक, स्वामी, परमेश्वर है हम नहीं।

मन्त्र के अंत में प्रयुक्त होने वाला शब्द ''स्वाहा'' हमें प्रेरणा करता है कि हमेशा सु माने अच्छा आह माने बोले अर्थात् सदा प्रिय बोलो तथा उत्तम वस्तुओं का दान किया करो। जैसा ज्ञान मन में है वैसा ही बोलो। यज्ञ कुण्ड में घी और सामग्री की आहुति डालने पर हर बार एक छोटा सा शब्द अन्त में बोला जाता है ''इदन्न मम्'' अर्थात् यह मेरा नहीं है। यह शब्द प्रेरणा करता है कि संसार की कोई भी वस्तु हमारी अपनी नहीं है। बार-बार ऐसा बोलने से सांसारिक वस्तुओं के प्रति हमारा मोह या ममता नष्ट हो जाती है और यह भावना बनती है कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग कर दो।

इस प्रकार यज्ञ की प्रत्येक प्रक्रिया हमें संकेत करती है यज्ञाग्नि भी हमें अनेक प्रकार से प्रेरणा देती है। अग्नि के मुख्य रूप से तीन गुण है- प्रकाश, ताप और गति। प्रकाश- यज्ञानि हमें संकेत करती है कि प्रकाशित होओ न केवल [illegible] वस्त्र, पात्र, भवन, धन, वाहन, सम्पत्ति आदि भौतिक पदार्थो से बल्कि सत्य, दया, प्रेम, संयम, त्याग, तप, सेवा, ज्ञान-विज्ञान आदि से अपने अन्तःकरण को प्रकाशित करे। ताप- यज्ञाग्नि हमें प्रेरित करती है कि ताप अर्थात् जलाओ। किसको? अपने अंदर छिपे राग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार, प्रमाद, मोह आदि कुवासनाओं को ताकि हम सन्मार्ग की ओर अग्रसर होकर सुख की प्राप्ति कर सके। गति- यज्ञाग्नि हमारे में भावना भरती है कि रूको नहीं, चलते रहो, बढ़ते रहो। बाधाएँ आएगी, कष्ट आएगें, साथी छूट जाएगें, असफलता भी मिलेगी फिर भी हताश निराश न होवो, नया उत्साह, नई प्रेरणानाए नए-नए शुभ संकल्प मन में लेकर उठो और तब तक आगे बढ़ते रहो जब तक आपका संकल्प पूरा न हो और यज्ञ के अंत में सर्व वै पूर्ण स्वाहा कहकर शेष सब सामग्री घृत अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है जो हमें बोध कराता है कि संसार में समस्त सम्बंध (जो हमारे वर्तमान में है) एक दिन समाप्त हो जाऐंगे और यह शरीर भी हमारा न रहेगा केवल राख शेष रहेगी । अतः सांसारिक मोह का त्याग करो अन्यथा दु:ख की प्राप्ति होगी। इस प्रकार संपूर्ण यज्ञ हमें किसी न किसी बात की प्रेरणा देता है

और हमारी भावनाएँ, हमारा मानवीय व्यवहार लेने का नहीं बल्कि देने का है ऐसी शिक्षा देता है और सिखाता है कि यदि हम किसी से ले भी तो उसे प्रकृति माँ की तरह अनेक गुणा बढ़ाकर लौटाए। जैसे यदि हम एक मुट्ठी भर अनाज बोते हैं तो उसी अनाज को धरती माँ एक गठरी बनाकर लौटा देती है जब एक गठरी भरकर अनाज बोते हैं तो धरती माँ एक बोरी बना कर लौटा देती है जब इसलिए अपनी जीवनचर्या में, अपने दैनिक व्यवहार में इस यज्ञ रूपी महानतम, श्रेष्ठतम कार्य को अपनाए तथा अपने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के समक्ष उत्पन्न ग्लोबल वार्मिंग की समस्या का समाधान कर ''सर्वेभवन्तु सुखिन:'' की भावना को अपने हृदय में पल्लवित कर पुरूषार्थी बनें।

यज्ञ के महत्व व अध्यात्मिक पहलू को तो आपने समझ लिया, उसके द्वारा कौन-कौन से लाभ मानव जाति को प्राप्त होते हैं का ज्ञान भी हो गया परन्तु उसे अपने घरों में प्रतिदिन कैसे करना है, बस इतनी झिझक बाकी है। इस झिझक का ज्यादातर उत्तर यही मिलता है कि समय की कमी है और पैसे का अपव्यय। लेकिन ऐसा कहने वाले ज्यादातर लोग एक-एक घंटा मोबाईल पर बातें करने में समय बिता देते है, गपशप में, व्यर्थ की बातों में, टी. वी. देखने में और कितना समय फिजूल के कार्यों में बर्बाद कर देते हैं जबकि दैनिक यज्ञ करने में केवल 15 मिनट का समय लगता है। क्या ऐसे लोग दिन के 24 घंटे में से 15 मिनट का समय नहीं निकाल सकते ? रहीं बात अपव्यय की इनमें से ज्यादातर लोग शराब, सिगरेट, कोल्ड ड्रिंक, जंक फूड, आदि जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं, में पैसा खर्च करते हैं। अनावश्यक खिलौने व कपड़े चाहे कितने ही मंहगे क्यों ना हो खरीद लेते हैं तो क्या दैनिक यज्ञ में खर्च होने वाले 40 या 50 रूपये का खर्च नहीं कर सकते? जबकि यज्ञ में खर्च होने वाले इस रूपये के बदले आप 150 या 200 रूपये का लाभ प्राप्त कर लेते हैं। बीमारी रहित होकर, शुद्ध भोजन व शुद्ध विचार प्राप्त कर अपना तथा औरों का कल्याण करते हैं ये क्या कम है? ये तो हुआ आपके पैसों का सही उपयोग एक तो आपके पैसे बचे, दूसरा परोपकार किया। लेकिन जो पैसा भी लगा सकते हैं और समय भी दे सकते हैं वे लोग यह सोचकर यज्ञ नहीं करते कि मेरे अकेले के यज्ञ करने से क्या होगा और मैं ही न करूँगा तो क्या फर्क पड़ेगा? इसका संतोषजनक उत्तर यही है कि बूंद-बूंद से सागर बनता है। थोड़ी-थोड़ी भाप के कण विशाल बादलों का निर्माण करते हैं इसलिए यज्ञ को हमें अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए तभी हमारा व सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण संभव है।

चरित्रवान, कर्तव्यनिष्ठ व मेघा सम्पन्न संतान के लिए गर्भाधान संस्कार की भूमिका

लेखक- अखिलेश आर्येन्दु, नई दिल्ली

परिवार एवं समाज के लिए चिरत्रवान, कर्तव्यनिष्ठ व मेघा सम्पन्न सन्तान केवल श्रेष्ठ संस्कारों के द्वारा ही सम्भव है, यह हम जान चुके है। लेकिन साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि ऐसी सुसंस्कारयुक्त एवं मानवीय गुणों से सम्पन्न सन्तान के जन्म में गर्भाधान संस्कार की क्या और कितनी भूमिका है। भारतीय आचार्यों ने गर्भाधान संस्कार को जीवन-यात्रा की बुनियाद बताया है। जिस प्रकार से एक श्रेष्ठ नींव पर बनाया गया भवन टिकाऊ, दीर्घायु और शक्तिशाली होता है उसी प्रकार से गर्भाधान रूपी बुनियाद जितनी श्रेष्ठ, सन्तुलित और उद्देश्य परक डाली जाती है सन्तान रूपी भवन उतना ही श्रेष्ठ, दीर्घायु, शक्तिशाली और मेघासम्पन्न होता है।

भारतीय मनीषा में हर श्रेष्ठ एवं कल्याणकारी कार्य को धर्म का रूप दिया गया है। इससे कई लाभ और उद्देश्य पूरे होते है। पहले तो यह धर्म और आज भी मजहब से अलग श्रेष्ठ कृत्य माना जाता था। दूसरा यह कि धर्म के प्रति अतिशय लगाव के कारण अरुविकर और श्रमसाध्य एवं कठोर कार्य भी धर्म के नाम पर सहजता से सम्पन्न किये जाते रहे हैं।

गर्भाधान संस्कार को शास्त्रों में धार्मिक-संस्कार माना गया है। इसलिए इस संस्कार को उतने ही पवित्र, कर्तव्यनिष्ठा और नियमों का पालन करें हुए करना चाहिए जैसे और दूसरे धार्मिक कृत्य। गर्भाधान संस्कार को अमूमन जनमानस में एक घृणित या मनोरंजन-कृत्य माना जाता है। मनोरंजन के दौरान ही सन्तान की सम्भावना बन जाए बस इतने में ही गर्भाधान-संस्कार का कर्मकाण्ड पूरा मान लिया जाता है। पूर्वकाल में इसे धार्मिक-कृत्य इसलिए समझा जाता था क्योंकि यह नवीन आत्मा का प्रवेश द्वार था जहां से मानव का बीज उगना प्रारम्भ होता है। गर्भाधान संस्कार के कर्मकाण्डीय पक्ष पर दृष्टि दौड़ाएं तो पता चलता है कि जिस पवित्र भावना से पति-पत्नी के साथ घर के सदस्य, सहोदर, बन्धु, मित्र और यज्ञ सम्पन्न करने वाले विद्वान भाग लेते हैं उससे कहीं नहीं लगता है कि यह पति-पत्नी के मध्य मात्र काम क्रीड़ा है यह तो ऐसा पवित्र यज्ञ है जो केवल किसी एक-दो के लिए नहीं अपितु सारे समाज और सारे देश के लिए प्रभावित करने वाला होता है। एक उच्च आत्मा के आगमन से इस पूरे विश्व समाज का

रंग बदल सकता था। इस भावना से हमारे पूर्व गर्भाधान-संस्कार-यज्ञ सम्पन्न कराते थे। निम्न श्रेणी की आत्मा के आगमन से संसार का बहुत बड़ा उपकार भी हो सकता है, इस दूरदृष्टि को ध्यान में रखकर गर्भाधान-संस्कार भी एक पावन-कृत्य है, इस भावना से जब गर्भाधान संस्कार सम्पन्न कराया जाता है, उसके यहां श्रेष्ठ आत्मा का आगमन होता ही है। और जब नींव उत्तम और शक्तिशाली डाली जाएगी तो भवन भला कैसे कमजोर होगा।

भारतीय वैदिक परम्परा में गर्भाधान संस्कार वैयक्तिक संस्कार न होकर पवित्र सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार का रूप दिया गया। यह इसलिए भी जरूरी था कि यज्ञ में सम्मिलित होने वाले लोग सन्तान के जन्म तक गर्भवती स्त्री को हर प्रकार की सहायता व प्रेरणा देते थे अर्थात् समाज गर्भवती स्त्री के प्रति जिम्मेवार व निष्ठावान होता था। यह एक बहुत प्रेरक और अनुकरणीय बात है।

आज पूर्व की भांति सामाजिक परम्पराएं रीति-रिवाज एवं उत्सव उतने प्रासंगिक भले ही न रह गए हों, लेकिन हर व्यक्ति चाहता है कि उसके यहाँ श्रेष्ठ आत्मा का आगमन हो। लेकिन यदि हम श्रेष्ठ आत्मा के आगमन की इच्छा करते हैं तो उसी विधि-विधान का पालन करना पड़ेगा जिससे महान नव-आत्मा का जन्म होता है। शुभत्व और सुन्दरम् के लिए परिवार का वैसा ही वातावरण का निर्माण करना पड़ेगा जिससे शुभत्व एवं सुन्दम का पूर्ण प्रभाव परिवार में परिलक्षित हो सकें।

गर्भाधान संस्कार विधि-विधान से सम्पन्न कराने की सलाह स्मृतिकारों और गृह्य सूत्रकारों ने दी है। सम्पूर्ण जीवन-यात्रा का आधार या नींव होने के कारण इसे बहुत महत्व दिया गया है। गर्भाधान के समय जिस प्रकार के भाव, संकल्पनाए, विचार और मान्यताएं पति-पत्नी की होती हैं संतान में वैसे भी भाव, संस्कार और मूल्य स्फूटित होते हैं। इसलिए गर्भाधान के समय अत्यन्त सावधानी और सजगता बर्तने की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक विज्ञान ने भी शास्त्रों में वर्णित गर्भाधान संस्कार की बातों को विज्ञान सम्मत एवं तर्क संगत मान लिया है। इसमें अनेक वैज्ञानिकों का मत इस प्रकार के हैं-

1. वाल्टन- एक महान वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने परीक्षणों से बताया कि माता-पिता के रज-वीर्य में एक ऐसा तत्त्व रहता है जो उनके शरीर तथा मन के गुणों को लेकर सन्तान में पहुंचता है, जिससे माता-पिता के शारीरिक तथा मानसिक गुण सन्तान में संक्रांत हो जाते हैं। इसे उन्होंने *उत्पादक-कोष्ठों का तत्त्व'* - नाम दिया। उनके विचार से यह तत्त्व

अगली-से-अगली सन्तति में ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

2. विजमैन का मत – विजमैन का मानना था कि राज-वीर्य में वर्तमान उत्पादनक-तत्त्व' माता-पिता से सन्तान के बाद सन्तान में फिर निरन्तर चलता चला जाता है। इन वैज्ञानिकों के वंशानुक्रम सिद्धान्त के प्रभाव कितने तथ्यपूर्ण हैं इस पर अनेक परीक्षण किए गए। इन परीक्षणों से ये तय निकल कर आए कि एक परिवार में नीचे-ही-नीचे के गुणों के व्यक्ति उत्पन्न हुए, दूसरे परिवार में वंश-वंश के बाद ऊंचे-ही-ऊंचे गुणों के लोग उत्पन्न हुए। इससे यह बात पुष्ट होती है कि माता-पिता के जैसे संस्कार हाते हैं, वैसी ही सन्तान होती है। इन संस्कारों को बदला नहीं जा सकता। इस प्रकार वंशानुसंक्रमणवाद के अनुसार मानव के निर्माण में वंश का, माता-पिता के रज-वीर्य का इतना बड़ा योगदान है कि उसे मिटाया नहीं जा सकता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि जब माता-पिता से प्राप्त संस्कार को नहीं बदला जा सकता है तो शिशु में संस्कार आत्मसात कराने की चेष्टा का क्या मतलब! यहां यह बात ध्यान देने वाली है कि रज-वीर्य के संस्कार अमिट नहीं हैं। पर्यावरण को परिवर्तित कर माता-पिता के हल्के या अव्यावहारिक संस्कारों के प्रभाव को कम कर सकता है। संस्कार प्रक्रिया में पर्यावरण तथा परिस्थिति को बदल देने से व्यक्ति को बदल देना, यानी उसका नव-निर्माण

करना है। मनुष्य को मानव बनाने के क्रम में यही किया जाता है। शिशु के आचार-विचार, उसकी प्रकृति को अभीष्ठ रूप देने के लिए उसे ऐसे-ऐसे संस्कारों से घेर दिया जाता है जिससे वह सदाचारी, बुद्धिमान हो सके। माता-पिता जिन मानव मूल्यों को उसमें आत्मसात करना चाहते हैं वे सहजता से ग्रहण कराये जा सकते हैं।

गर्भस्थ शिशु को संस्कार देने का प्रथम सोपान- गर्भस्थ शिशु को जिस प्रकार व जैसा चाहें संस्कारित किया जा सकता है। इसमें गर्भवती माता की भूमिका प्रमुख होती है। यदि गर्भ के दौरान गर्भस्थ शिशु को मां ने सुस्कारों, मानवीय मूल्यों और आचार-व्यवहारों से पूर्णतः संस्कारित कर दिया-अपने संकल्प, विचार, स्वाध्याय, आहार-विहार और आचार से तो उत्पन्न होने वाली सन्तान निश्चित ही सत्साहस, प्रेम, दया, सत्य, धर्म, सुचिता और मानवीय मूल्यों से ओत प्रोत ही पैदा होगी। और यदि गर्भस्थ शिशु को कुसंस्कार और अमानवीय गुणो से संस्कारित किया गया तो पैदा होने वाली सन्तान मानवता के लिए यदि कलंक साबित हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मां के पेट में जो सन्तान है उसका दो दिशाओं में निर्माण होता

है। प्रथम दिशा है- उसका शारीरिक विकास और दूसरी दिशा है- उसका मानसिक का विधान है। यह संस्कार गर्भ धारण के दूसरे या तीसरे महीने में किया जाता है। गर्भ स्थिर होने के बाद गर्भस्थ सन्तान को दो प्रकार के खतरे हो सकते है। पहला खतरा किसी कारण से गर्भ गिर जाए, दूसरा खतरा यह हो सकता है कि स्वास्थ्य के नियमों का उचित पालन न करने से संतान का शरीर ठीक तरह से विकसित व पुष्ट न होने पाए। इन खतरों से बचने के लिए माता-पिता को यह जानना आवश्यक है कि वे कौन-कौन सी बाते हैं जिन्हें ध्यान में रखकर गर्भस्थ शिशु के शारीरिक पुष्टि के लिए सन्तुलित आहार-विहार, पुंसवन-संस्कार और उन औषधियों का सेवन जो गर्भस्थ शिशु को शक्ति प्रदान करें।

एक जो बहुत ही महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि परिवार व पास-पड़ोस का वातावरण जितना संस्कारक्षम व आनन्दायक रहेगा गर्भस्थ शिशु का विकास उतना ही बेहतर होगा, इसलिए सारी सावधानियां बर्तते हुए इस बात पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

गर्भस्थ शिशु का मानसिक विकास- महान शास्त्रकारों ने गर्भस्थ शिशु के पूर्ण मानसिक विकास के लिए वैज्ञानिक तरीके से संस्कार करने की विधि बताई। यह भले ही सामान्यतः न प्रचलित हो लेकिन है बहुत ही काम की बात। इसलिए गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास के लिए पवित्र भाव एवं शुभ-संकल्प के साथ सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्पन्न कराना चाहिए। शास्त्र के अनुसार 'सीमन्तोन्नयन' का अर्थ- मस्तिष्क का उन्नयन होता है। इस संस्कार के सम्पन्न कराने के बाद माता का ध्यान मस्तिष्क के विकास पर केन्द्रित हो जाता है। पति इस संस्कार में पत्नी के केशों को सुगन्धित तेलों से आवेशित करता है, कंघी करता है और जूड़ा बांधता है। वह इसलिए किया जाता है क्योंकि इसका प्रभाव गर्भ में पल रहे बच्चे पर भी पड़ता है। पत्नी जितनी खुश सुखी और आनन्द का अनुभव करेगी गर्भ में पल रहे शिशु पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। इसलिए परिवार जनों को चाहिए कि वे गर्भवती स्त्री के लिए वैसा वातावरण का निर्माण करें जिस प्रकार की संतान उन्हें चाहिए। उदास, लड़ाई-झगड़े वाले, हिंसा, झूठ-फरेब या भ्रष्टाचार से युक्त वातावरण में पल रही गर्भस्थ शिशु कभी भी श्रेष्ठ नहीं बन सकती है। सन्तान कोई मिट्टी का खिलौना तो होती नहीं, इसे तो विधिवत निर्माण किया जाता है, वह भी संस्कार के द्वारा। यदि हम साहसी, सदाचारी, सदाशयी, करुणायुक्त, प्रेममयी, धर्म अनुगामी और परोपकारी सन्तान चाहते हैं तो हमें उसी प्रकार

का संस्कार देना ही पड़ेगा, इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

सुश्रुत संहिता में शरीर स्थान नामक श्लोक में गर्भवती स्थिति की संवेदनाओं, इच्छाओं और भावनाओं का सन्तान पर प्रभाव स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। यहां कहा गया है :

येषु येषु इन्द्रियार्येषु दोहदे वा विमानना।
प्राजायते सुतस्यार्ति तस्मिन् तस्मिन्तवैन्द्रिये।।

अर्थात् गर्भवती स्त्री की जिस बात में अनिच्छा होती है, उसकी सन्तान की भी उस बात में अनिच्छा हो जाती है, और जिस बात में गर्भवती स्त्री की इच्छा रहा करती है उस बात में उसकी सन्तान की भी इच्छा बन जाती है। मन में चिन्तन जैसा गर्भवती स्त्री का चलता है उसी के अनुरूप सन्तान का जन्म होता है। संहिताकार कहते हैं-

आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते।
देवता प्रतिमायां सु प्रसूते पार्षदोपमम्।।

इतनी ही नहीं गर्भवती स्त्री जिस प्रकार की तस्वीर अपने मन में खींच लेती है वह उसी प्रकार की सन्तान को जन्म देती है-

यादुशं भजते नारी सुतं सूते तथाविधम।
तस्मात् प्रजाविशुद्धयर्थ स्त्रियंरक्षेत् प्रयत्नतः।।

गर्भ काल के संस्कारों से सम्बन्धित घटनाएं- महाभारत में अभिमन्यु की अतिशय आश्चर्य जनक एवं रोमांचकारी घटना जिसमें सुभद्रा के पेट (गर्भ) में जब अभिमन्यु था जब सुभद्रा को अर्जुन के चक्रव्यूह भेदन की कथा सुनाई थी, इसी का प्रभाव था युवा होने पर बिना चक्रव्यूह तोड़ने की कला सीखे भी महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु ने कौरव सेना के बड़े-बड़े महारथियों के छक्के छुड़ा दिये थे। लेकिन अर्जुन ने सुभद्रा को चक्रव्यूह तोड़कर बाहर आने की कला नहीं बताई थी इसलिए अभिमन्यु चक्रव्यूह तोड़कर बाहर न आ सका। गर्भ में पल रहे शिशु के ऊपर कितना और कैसा गहरा और आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ता है इस सृष्टि में घटी रहस्यमय प्रथम घटना से अनुमान लगा सकते हैं। इन घटनाएं घटीं जिसे पढ़ सुनकर एवं अभिमन्यु अष्टावक्र के ऊपर गर्भकाल के दौरान दिये शिशु को संस्कार को मानने के लिए विवश होना पड़ता है। अमेरिका की घटना है। अमेरिका के राष्ट्रपति गारफील्ड का हत्यारा गीटू जब अपनी माँ के गर्भ में था तब उसकी माँ ने गर्भपात कर उसकी हत्या कर डालने की पुरजोर कोशिश की थी। वह गर्भघात तो नहीं कर सकी परन्तु उसके गर्भ में पल रही सन्तान पर जो संस्कार (हत्या के) पड़ चुके थे उन्होंने गीटू को हत्यारा बना दिया। नैपोलियन के बारे में कहा जाता है जब वह अपनी माँ के पेट में था तब उसकी माँ सेनाओं की परेड देखा करती थी। जब वह सैनिकों की पैरेड और सैनिक गीत सुनती थी तो

उसका रोम-रोम प्रफुलित हो जाता। क्या हमें इसमें कोई संदेह होना चाहिए कि नैपोलियन जैसा इतिहास का महान योद्धा गर्भ में ही योद्धा बन गया था और जन्म होने के बाद उसके गर्भकाल के संस्कारों का स्फूटन हुआ । और प्रिंस बिस्मार्क की यह गर्भकाल की घटना में कितनी रोमांचकारिता व रहस्यमयता भरी हुई है । इतिहास की इस घटना कि प्रिंस बिस्मार्क के गर्भ में रहने के दौरान उसकी मां अपने घर के उन भागों को बड़े मानसिक वेदना से देखा करती थी जिन्हें फ्रेंच सेनाओं ने अपने उन्माद में नष्टभ्रष्ट कर दिया था । इस तीव्र और अमिट संस्कारों का प्रभाव यह हुआ कि विस्मार्क जब बड़ा हुआ तो उसके हृदय में फ्रांस से बदला लेने की तड़प जाग उठी । उपरोक्त सभी गर्भकाल काल में पड़ने वाले संस्कारों के जबरदस्त प्रभावों की घटनायें क्या हमें यह मानने और चिन्तन के लिए बाध्य नहीं करतीं कि इन गर्भकाल के संस्कारों का प्रभाव से कोई अभिमन्यु बन सकता है तो कोई ब्रह्मर्षि और हत्यारा भी । कोई महान योद्धा तो कोई महान शासक भी । इन घटनाओं से यह तथ्य प्रकट हो ही जाता है कि बालक में गर्भकाल के संस्कार उसे श्रेष्ठ और भ्रष्ट दोनों बनाते हैं । उसे साहसी भी बनाते हैं तो उसमें दयालुता के गुणों को भी उन्मेषित करते हैं और क्रूरता भी पैदा करते हैं ।

अतीत में घटी इन घटनाओं से यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि केवल गर्भधान से ही नहीं है बल्कि गर्भकाल में भी गर्भस्थ शिशु के अवचेतन दूसरे तरह से अमिट संस्कार पड़ते हैं।

संस्कार प्रक्रिया- संस्कार देना क्या आज के दौर में एक चुनौती नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर यदि 'हां' में दिया जाए तो इसका मतलब होगा। संस्कार को लेकर लोगों में इच्छा, रूचि और सद्भावना नहीं है, और यदि 'नहीं' में दिया जाए तो इसका मतलब यह होगा कि संस्कार को लेकर कोई संकट नहीं है। दरअसल यह प्रश्न इसलिए स्वाभाविक हो गया है क्योंकि लोगों में संस्कार और संस्कार, प्रक्रिया के प्रति कोई अभिरूचि नहीं बन पा रही है। अभिरूचि कैसे जगे इसके लिए क्या किया जाना चाहिए यह एक और सहज प्रश्न है। लेकिन संस्कार और संस्कार प्रक्रिया का प्रश्न है वह बहुत ही सहज, सरल और बोधगम्य है। भारतीय मनीषियों ने संस्कार प्रक्रिया को तीन अंगों में विभक्त किया है। 1. दोषापनायन। 2. हीनांगपूर्ति। 3. गुणाधान। इसे इस प्रकार सहजता पूर्वक हम समझ सकते हैं- जब सोना खान से निकाला जाता है तब वह अनेक दूसरे तत्त्वों से मिश्रित होता है। कहने के तो वह सोना होता है लेकिन वह पूरी तरह अशुद्ध होता है। ऐसा सोना

बाजार में बिकने के लिए भी उपयुक्त नहीं माना जाता है। भूमि से निकाले गए सोने का स्वर्ण [illegible] भट्ठी में खूब तपाया जाता है। तपाने से उसमें व्याप्त अशुद्ध दूसरे तत्व निकल जाते हैं या निकाल दिये जाते हैं। सोने को ताप देकर शुद्ध कर लेने की प्रक्रिया को आचार्यों ने दोषापयनन कहा है। इस प्रथम प्रक्रिया के बाद सोने पूर्ण स्वर्ण बनाने के लिए उसमें ताम्र धातु का सन्निवेश कराया जाता है। ताम्रधातु का सोने में सन्निवेश करना हीनांगपूर्ति है। हीनांगपूर्ति की प्रक्रिया से सोने को गुजारे बिना उसे अलंकार (गहने). बनाने के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता है। हीनांगपूर्ति हो जाने के बाद जब सोने को आभूषण का रूप प्रधान किया जाता है तो इस प्रक्रिया को गुणाधान या अतिशयाधान कहा जाता है। जो स्वर्ण पृथ्वी से निकालने के बाद हमारे किसी प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर सकता था वही स्वर्ण संस्कार प्रक्रिया से गुजारने पर अति मूल्यवान बन जाता है। ठीक इसी प्रकार जब बच्चा मां के गर्भ से पैदा होता है तो वह पूर्वजन्मों के तरह-तरह के संस्कार लेकर आता है।

लेकिन संस्कार प्रक्रिया के द्वारा उसका दोषापनयन, हीनांगपूर्ति और गुणाधान करके उसे एक चरित्रवान, मेधावी, पुरूषार्थी, सदाचारी, कर्तव्यवान, सत्यवादी और प्रखर सत्साहसी जीवन-योद्धा बनाया जा सकता है। बचपन से ही यदि शिशु को परिवार के लोग अपने व्यवहार, हावभाव, चरित्र और स्वभाव से [illegible] मानवीय मूल्यों का सम्प्रेषित करना प्रारम्भ कर दे तो कोई कारण नहीं कि बच्चा आगे चल कर एक श्रेष्ठ मानव न बन सके। यह सही है कि बच्चे में अनेक वंशानुगत, परिवेशगत व पूर्वजन्म के अनेक संस्कार विद्यमान होते हैं। लेकिन इससे यह नहीं कहा जाता सकता कि बच्चे में नव-संस्कार नये आत्मवेशित कराये जा सकते। बहुत से बच्चों में नकारात्मक विचारों, वृत्तियों की बहुलता होती है, लेकिन यदि सशक्त ढंग से यदि ऐसे बच्चों को संस्कार प्रक्रिया से गुजारा जाए तो उनमें सकारात्मक सोच और सुवृत्तियों का आत्मवेशित कराया तो जा ही सकता है उनके मस्तिष्क में मानवीय मूल्यों को भी सदा-सदा के लिए सम्प्रेषित किया जा सकता है। संस्कार प्रक्रिया में ऐसे आनन्दमय एवं संस्कारक्षम वातावरण का सृजन किया जाता है जिससे नवजात शिशु या बालक अनजाने में ही मानवीय मूल्यों को सदा-सदा के लिए सम्प्रेषित किया जा सकता है। संस्कार प्रक्रिया में ऐसे आनन्दमय एवं संस्कारक्षम वातावरण का सृजन किया जाता है जिससे नवजात शिशु या बालक अनजाने में ही मानवीय मूल्यों को आत्मसात कर लें। बच्चा उन सभी चीजों को अनजाने में ग्रहण करता

रहता है जिनका उसमें अभाव होता है। इस बात को ध्यान में रखकर परिवार या गुरूकुल में उसे मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। ऐसा बालक जो संस्कार प्रक्रिया से गुजरता है और मानवीय गुणों से ओतप्रोत हो जाता है, वही आगे चलकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए एक आदर्श, अनुकरणीय एवं उपयोगी बनकर स्वयं के प्रति और परिवार-समाज के प्रति ईमानदारी से अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्वाह करता है। कहना न होगा संस्कार की इस प्रक्रिया दोषापनयन के अन्तर्गत आती है। ऐसे मानवीय मूल्य जिनका उसमें अभाव है, को आत्मसात् कराने की हीनांगापूर्ति है तथा मानवीय गुणों का सम्प्रेषण कर उसे एक आदर्श और अनुकरणीय व्यक्ति के रूप में ढालने या तैयार करने की प्रक्रिया गुणाधान है। 'संस्कार' मानवीय मूल्यों को व्यक्ति के अवचेतन में रोपित करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को जितनी संवेदना, सुचिता, शक्ति और दायित्वबोध से प्रेरित होकर अनवरत् चलाया जाता रहेगा, यह प्रक्रिया उतनी ही सशक्त रूप से चलती रहेगी और अपना अमित प्रभाव व्यक्ति पर छोड़ती रहेगी। इस सन्दर्भ में एक बात और समझने की है कि व्यक्ति की अन्तश्चेतना में जितने गहरे और सुदृढ़ मानवीय मूल्यों का रोपण होता है, वह परिवार और समाज के साथ वैसा ही व्यवहार, चरित्र, गुण, स्वभाव कर्म का तालमेल रखता है। दूसरों के प्रति प्रतिक्रिया, नकारात्मक या दुराग्रह पूर्ण विचार, अविश्वसनीयता और ईर्ष्या करना या न करना इस बात पर निर्भर करता है उस व्यक्ति में मानवीय मूल्यों के संस्कार कितने गहरे है। इसी प्रकार यदि बचपन में ही कहानियों, घटनाओं या गीतों के माध्यम से प्रेम, दया, करूणा, सत्य, अहिंसा, न्याय, धर्म और सदशयता की भावनाएं भर दी जाएं तो बड़ा होकर व्यक्ति के रूप यही बालक एक आदर्श एवं चरित्रवान नागरिक के रूप में समाज के लिए प्रेरणास्रोत भर दी जाएं तो बड़ा होकर निर्भयता, परोपकार, जीवटता, तितिक्षा और जागरूकता के भाव बचपन में ही संस्कार प्रक्रिया के द्वारा बालक में रोपित कर दिये जाएं तो यही बालक एक आदर्श नागरिक के रूप में समाज व देश के नव-निर्माण भी महती भूमिका निभा सकता है।

आज आधुनिक दौर में संस्कार प्रक्रिया को स्कूली शिक्षा या प्ले स्कूल की तरह चलाना कठिन अवश्य है लेकिन असम्भव एकदम नहीं है। आवयश्कता दृढ़ संकल्प, कार्ययोजना और व्यवहार में परिणत करने की है। छोटे-छोटे बच्चों को यदि स्कूलों में ही उत्तम संस्कारों और मानवीय मूल्यों व गुणों को आत्मसात कराने के

लिए कार्य योजना प्रारम्भ की जाए तो इसके अच्छे परिणाम आ सकते हैं।

लोक जीवन एवं लोक साहित्य में बसा संस्कार- संस्कार यूं तो वेद, शास्त्रों में विधि-विधान से वर्णित हैं लेकिन लोक मानस और लोक साहित्य में सदियों से नदी की अविरल धारा के समान प्रवाहमान है। विवाह से लेकर शिशु जन्म और शिशु के बड़े होने तक किये जाने वाले विविध कर्मकाण्डों की बहुत ही रोचक एवं प्रेरक गीत, भजन व लोरियाँ गाई-गुनगुनई जातीं रही हैं। केवल हिन्दी प्रदेशों में ही नहीं अपितु अहिन्दी प्रदेशों में भी संस्कार गीतों का प्रचलन रहा है। ये गीत किसी श्लोक या मंत्र से कम प्रेरक व भवजन्य नहीं लगते। जिन मानवीय मूल्यों का इनमें अंकन होता हैं वे बच्चे को ही प्रभावित नहीं करते हैं बल्कि परिवार व समाज के दूसरे लोग भी प्रभावित होते हैं। उत्साह, सत्साहस, वीरता, कर्तव्यनिष्ठा, देशप्रेम, मानवप्रेम, मानवप्रेम, मातृ पितृ एवं गुरु प्रेम से लेकर प्रकृति प्रेम का चित्रण लोक साहित्य का अंग है।

सन्तान का जन्म एक उत्सव से कम नहीं माना जाता। ऐसा ही एक प्रेरक वर्णन इस भोजपुरी सोहर में किया गया है।

जुग-जुग जिया तू ललनवा भवनवा के भाग जागल हो।
ललना लाल होइहैं कुलवा के दीपक मनवा में आस लागल हो।
आज के दिनवा सुहावन, रतिया मयावन हो,
ललना जिजिया के जनमें हारिलवा,
होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।

शिशु का माता-पिता जैसा ही मुख मण्डल है जो सूर्य-चन्द्रमा जैसा प्रकाशित है। एक बानगी-

नकिया तो हउवे जैसे माई के
अखियां तो बाबू के हो,
ललना मुंहवा तो चन्दा के
सुरूजवा के सगरो अंजोर भइले हो।

जिस सहजता, प्रेषणीयता और माधुर्य ढंग पूर्ण ढंग से संस्कार गीतों के माध्यम से बच्चे में मानवीय को रापित किया जा सकता है वह अपने आप में बेजोड़ है। यही कारण है कि भारतीय समाज में अनेक बदलावों के बाद भी संस्कार देने वाले गीत गांव ही नहीं शहरों में बड़े भावपूर्ण ढंग से गाए जाते हैं। नए दौर में संस्कार गीतों को सहेजकर रखना सबसे बड़ी जरूरत है।

संस्कारों में प्रथम तीन संस्कार सीधे तौर पर शिशु के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक उन्नति के ही लिए बनाए गए हैं।

शेष पेज 5 एवं 10 पर...

विदेशी महापुरूषों की दृष्टि में गाय

1. गाय से बढ़कर अन्य कोई भी पशु मनुष्य का मित्र नहीं है, और न गाय जैसा कोई मधुर स्वभाव वाला है। उसमें शतप्रतिशत मातृत्व है और उसका मनुष्य जाति से यही माता का सम्बन्ध है। **(श्री वाल्टर ए, डामर, अमेरिका)**

1. गाय हमारे दुःख भुवन की देवी है। वह भूखों को खिलाती है, नंगों को पहनाती है, बीमारी को अच्छा करती है, उसकी ज्योति चिरन्तन है। **(होड्र्स डेयरी मैन, अमेरिका)**

3. कोई भी जाति या देश गाय के बिना उच्च सभ्यता नहीं प्राप्त कर सकी है। गाय के बिना खेती स्थिर और समृद्ध नहीं हो सकती और न मनुष्य सुखी और स्वस्थ ही हो सकते है। **(राल्फ ए, हेइरो)**

4. गाय मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ हितैषी है। वह हमारे एक मित्र के रूप में है, जिससे कभी कोई अपराध नहीं हुआ, जो हमारी पाई-पाई चुका देती है और घर की तथा देश की रक्षा करती है। **(ई.जी. वेनेट, स्टेट डेयरी कमिश्नर, मिसूरी अमेरिका)**

5. एक समय के बाद जो पशु कसाईयों को सौंप दिये जाते हैं, उनका उद्धार आवश्यक है। **(सर राल्फ फिलिप्)**

6. हमारी सभ्यता तो गो-प्रधान सभ्यता ही है, गोवंश उन्नत न हो, वहाँ श्वेत जाति की गुजर नहीं हो सकती। **(मिलो हैस्टिंग्स)**

7. गौ बिना ताज की महारानी है, उसका राज्य सारी पृथ्वी है, सेवा ही उसका लक्ष्य है और जो कुछ वह लेती है, उसे सौगुना करके देती है। **(मालकम, आर. वेटर्सन, अमेरिका)**

8. प्रत्येक बालक का आरोग्य-केवल आरोग्य ही नहीं प्रत्युत बुद्धि भी उसके द्वारा पीये गये दूध के परिणाम ही नहीं प्रकार पर अधिक आधारित है। भारत के ऐसे करोड़ों बच्चों के शारीरिक विकास का आधार उनका आरोग्य, उनकी बुद्धि दूध के परिणाम और प्रकार पर निर्भर है। **(लार्ड लिन लिथगो)**

9. गो मांसाहारियों के लिए गाय और बैलों पर अत्याचार किया जाता है, परन्तु एक के स्वार्थ के लिए दूसरों का स्वाथ क्यों नष्ट किया जाय। थोड़े से मांसाहारियों के लिए गोहत्या जारी रहे और जिनका (करोड़ों का) दूध स्वार्थ है, वे सच्ची चिल्लाहट मारकर ही रह जायें यह आश्चर्य है। **(सर जान उडरफ)**

10. अपनी संतान का हार्दिक कल्याण चाहनेवाले माता-पिता को अपने लड़के-लड़कियों को कभी भेंस का दूध न पिलाना चाहिये। भेंस का दूध मनुष्यों के लिए उपयोगी पेय नहीं है। **(ईसा ट्वीट)**

योग द्वारा ही वर्तमान समस्याओं का समाधान सम्भव है।

- वेदाचार्य डॉ० रघुवीर वेदालंकार

योग एक मानस शास्त्र है। जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों से हटना सिखाया जाता है। वर्तमान समस्याओं के सर्वांड्गीण विनाश के लिए बहुत उपयागी है, मानव जीवन के लिए आवश्यक शारीरिक, मानसिक, बैद्धिक तथा आत्मिक विकास में यह विद्या सफलता दिलाती है।

वर्तमान समय में योग का पर्याप्त प्रचार हो रहा है, किन्तु यह प्रचार केवल दो रूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है। या तो ध्यान, जिसे आज के प्रगतिशील समाज में मेडिटेशन नाम दिया गया है, के नाम पर कुछ देर आंखें बन्द करके बैठ जाते हैं, या योगा के नाम पर विविध प्रकार के आसन करके सन्तुष्ट हो लिया जाता है। कि हम योग कर रहे हैं। शहरी जीवन में आपने आपको इन दोनों क्रियाओं को करने वाले ऐसे अनेक सज्जन मिल जायेंगे, जो गर्व से कहते मिलेंगे कि मैं योगा कि क्लास में गया था, या प्रातः काल नियमित योगा (योगासन) करता हूँ। इसी प्रकार Meditation के द्वारा सन्तुष्ट हो जाने वाले अनेक जन भी अपने को योगाभ्यासी करने का भ्रम पाल लेते हैं।

ये दोनों ही क्रियाएं योग नहीं हैं। यह भी कह सकते हैं कि पातंजल योग दर्शन से इनका सम्बन्ध नहीं है। जहाँ तक Meditation का प्रश्न है, वह स्वल्पांश में योग कि धारणा का स्वरूप तो है, तथापि विशुद्ध रूप में धारणा भी नहीं है, अपितु विचारों का केन्द्रीकरण है। ऐसा केन्द्रकरण तो गम्भीर कार्य करते हुए सभी को कराना पड़ता है। गाड़ी चलाते हुए ड्राइवर, आप्रेशन करते हुए डॉक्टर, शोध करते हुए वैज्ञानिक, अध्यापन करते हुए अध्यापक इत्यादि अनेक व्यक्ति पूर्ण दत्तचित होकर ही अपने कार्य को करते हैं। दो बांसो के बीच में बन्धी हुई लम्बी रस्सी पर चलने वाला नट, तीव्र गति से मौत के कुएँ में मोटर साइकिल चलाने वाला व्यक्ति तो इनसे भी अधिक ध्यानमग्न होकर अपना कार्य करते हैं, तथापि उन्हें कोई योगी नहीं कहता, क्योंकि उनका ध्यान योग से सम्बन्धित नहीं, अपितु अपने कार्य से सम्बन्धित है। पतज्जलि ने तो योग की सुस्पष्ट परिभाषा दे दी है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोध :'। सभी प्रकार की चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग हैं। यहां यह समझ लेने बहुत आवश्यक है, कि पतज्जलि का यह चित्तवृत्तिनिरोध किसी समय विषेश के

लिए नहीं है, अपितु 24 घण्टे जीने वाले जीवन के लिए है। इस पर बाद में विचार करेंगे, पहले आसनों के विषय में भी कुछ कहना अनिवार्य है।

आजकल योग/योगा के नाम जिन आसनों की क्लासें लगायी जाती हैं, वे परम उपयोगी हैं। लेखक का उनसे कोई विरोध नहीं, किन्तु वे आसन शारीरिक स्वास्थ्य तथा रोगमुक्ति तक ही सीमीत हैं। यह भी बहुत बड़ी उपलब्धि है। वर्तमान समय में अनियन्त्रित भोग - विलास में लिप्त होने वाले, अनाप-शनाप खाने वाले जन नाना रोगो से ग्रस्त रहते ही हैं। ये रोग ऐसे दुसाध्य भी होते हैं, जिन्हें डॉक्टर/अस्पताल भी ठीक नहीं कर पाते। योगासानों के द्वारा ऐसे अनेक व्यक्ति रोगमुक्त होते देखे गये हैं। यह योगासनों की बहुत बड़ी उपलब्धि है, तथा यह जनसाधारण को चहिए। उसके लिए यही सब कुछ है। इसलिए वह इनसे आगे जाने का यत्न ही नहीं करता। न करे, किन्तु इन्हें योग मानने का भ्रम उसे नहीं पालना चाहिए। पतंजलि ने योगदर्शन में इस प्रकार के आसनों का विधान नहीं किया। उनके अनुसार तो आसन वही है, जिसमें सुखपूर्वक लम्बे समय तक धारण, ध्यान में बैठा जा सके। क्या पतंजलि को अनेक प्रकार के आसनों का ज्ञान नहीं था। अवश्य होगा, किन्तु वे उन्हें ध्यान से सहायक या आवश्यक नहीं मान रहे हैं। इसलिए योगदर्शन में उनको स्थान नहीं दिया। रही बात रोग मुक्ति की। इसके लिए पंतजलि दुसरा उपाय सुझाते हैं- ईश्वरप्रणिधान। इसकी व्याख्या में व्यास जी लिखते हैं कि ईश्वर प्रणिधानी को व्याधि आदि दुःख नहीं सताते। इसके साथ ही पतंज्जलि द्वारा प्रतिपादित यम- नियम-प्राणायाम- प्रत्याहार का पालन करने वाला साधक या तो रोगी होगा ही नहीं, होगा भी तो बहुत कम। क्योंकि 'भोगे रोगभयम्' यह संसार भोगी है, तभी तो रोगों में ग्रस्त है। इसीलिए पतज्जलि को विस्तार से योगासनों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं पड़ी।

योग इतना सस्ता नहीं है जितना कि उसे आज बना दिया गया है। पतज्जलि का योग एक समग्र जीवन पद्धति है। वह किसी एक भाग की साधना का नाम नहीं, अपितु योग के आठों अंगों की समग्र साधना का नाम है। इसलिए वह केवल किसी काल विशेष या स्थान विशेष में की जाने वाली क्रियाएं नहीं हैं। अपितु चैबीसों घण्टे जीवन से सम्बन्धित एक सुव्यवस्थित पद्धति है कि जिससे मानव जीवन पूर्णतः नियन्त्रित एवं परिमार्जित हो जाता है।

योग के द्वारा न केवल व्यक्ति का, अपितु पूरे समाज एवं राष्ट्र का जीवन परिमार्जित हो सकता है, शुद्ध हो सकता है।

योग से वर्तमान समस्याओं का समाधान कैसे सम्भव है, इस पर भी विचार करते हैं-

योग का प्रारम्भ आसनों अथवा ध्यान से नहीं होता, अपितु यम-नियमों से होता है। लेखक की सुदृढ़ मान्यता है कि यम-नियमों के पालन बिना योग में प्रवेश हो ही नहीं सकता। पतंजलि द्वारा विहित यम-नियमों के प्रयोजनों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है-

(क) दुष्कर्मों के निवारणार्थ- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहाचर्य इन चारों का यही प्रयोजन है।

(ख) सांसारिक पदार्थों से विरक्ति- अपरिग्रह का फल।

(ग) चित के मलों का क्षालन- आन्तरिक शौच तथा स्वाध्याय से चित की एकाग्रता प्राप्त होती है। इससे ही इन्द्रियों पर जय प्राप्त होती है, जो कि योगी के लिये परम आवश्यक है। इन्द्रियलोलुप व्यक्ति योग कर ही नहीं सकता।

(ङ) ईश्वर प्रणिधान समाधि की सिद्धि में साक्षात् कारण बनता है। इस प्रकार सभी यम-नियम योगाभ्यासी के लिए आवश्यक है।

प्रश्न है, योग से वर्तमान समस्याओं का समाधान कैसे होगा? होगा, निश्चित ही होगा। समाजिक विषमताओं/समस्याओं के कारण सुस्पष्ट हैं। आज का मानव शीघ्रता से भोगवाद की ओर न केवल भाग रहा है, अपितु उसमें

आकण्ठ धसा हुआ है। आज का अध्यात्म भी भोगवाद की छाया में जी रहा है। बड़े-बड़े धर्मगुरू, मठाधीश, कथावाचक भी इस भोगवाद से अछूत नहीं हैं। उनके पास वे सभी सुख-सुविधाएं विद्यमान हैं, जो सभी सांसरिक व्यक्तियों को उपलब्ध भी नहीं हैं। धन एवं यश की तृष्णा उनके मन में गहराई तक छायी रहती है। जब सन्तों, महन्तों की यह दशा है तो सामान्य सांसारिक जनों की क्या स्थिति होगी? योगदर्शन इसी तृष्णा पर कुठाराघात करता है। वह उसे पूर्णतः नष्ट करता है। इसलिए पतञ्जलि ने 'सन्तोष' नामक नियम बताया तथा इसका फल भी बतला दिया- **सन्तोषादनुत्तमं सुखलाभः।** अर्थात् सन्तोष से ही अलौकिक सुख मिलता है तृष्णाक्षय के सम्बन्ध में व्यास जी ने एक श्लोक उपस्थित किया है-

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।

तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडर्शी कलाम्।।

अर्थात सेसार के दिव्य सुख के 1/16 भाग के बराबर भी नहीं है। यदि समाज इस श्लोक को हृदयंङ्गम करता है, तो उसके बहुत से कष्ट मिट जाऐंगे। तृष्णा के वशीभूत होकर

ही हम वस्तुओं का अनाप-शनाप आवश्यक संग्रह किये जाते हैं। चेन्नई की मुख्यमंत्री जयललिता का उदाहरण सुप्रसिद्ध है कि उसके पास इतनी साड़ीयां निकली कि वर्ष में प्रत्येक को एक बाद भी धारण करने का अवसर नहीं आता। अन्य सम्पत्ति का विवरण तो अलग है, जो सर्वविदित है। अकेली जयललिता ही नहीं, राजनीति के लोग इसी धर्म का निर्वाह कर रहे हैं। राजनीति में तो दोनों हाथों से सम्पति बटोरने की पूरी छूट है ही। आज समान्य जनता भी इसी दौड़ में शामिल हो रही है। परिणाम क्या है? दुःख, छीनाझपटी, बेईमानी, रिश्वत इत्यादि। यदि इन लोगों ने पतञ्जलि के नियम 'अपरिग्रह' का पाठ पढ़ा होता तो यह दुर्दशा न होती।

आज सर्वत्र आतंकवाद, हत्याएं, मारकाट का साम्राज्य है। इसमें अन्य कारणों के सिवाय एक कारण यह भी है कि अंडे तथा मांस भक्षण के द्वारा हिंसावृत्ति हमारे रूधिर में प्रवेश कर गयी है। अपने सुख के लिए प्राणी के प्राण लेने में आज का मानव संकोच नहीं करता है। इस वृत्ति पर पतंजलि के 'अहिंसा' नामक यम द्वारा ही नियन्त्रण लगाया जा सकता है। दण्ड के भय या अन्य कारण से हिंसावृत्ति दूर होने वाली नहीं है। भारत आज अपनी जनसंख्या वृद्धि से भयभीत है। इसलिए परिवार नियोजन पर पता नहीं, राष्ट्र का कितना धन बर्बाद किया जा रहा है। परिवार वृद्धि के मूल मे जो काम वासना है, उस पर नियन्त्रण लगाने का कोई यत्न नहीं किया जा रहा, उल्टे, विषय भोग को बढ़ावा देने वाले नाना साधन सरकार तथा डॉक्टरों की ओर से सुझाए जा रहे हैं। यदि पतंजलि के 'ब्रहाचर्य' नामक यम का इतनी तत्परता से प्रचार-प्रचार किया गया होता तो राष्ट्र तथा राष्ट्रवासियों का चरित्र कुछ ओर ही होता है। तब अपहरण नहीं होते। तब बलात्कार नहीं होते। ब्रह्मचर्य ही सबको नियन्त्रित कर देता है। ऐसा करे कौन? वेद में कहा है- **ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति।** अर्थात् ब्रह्मचर्य तथा तप के द्वारा ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आज तो बिल क्लिंटन जैसे राष्ट्रपति भी विद्यमान हैं, जिनकी दुश्चरित्रता समस्त संसार में सुप्रसिद्ध होने पर भी उनके गौरव में कमी नहीं आयी। भारत में भी यह विचार तीव्रता से घर करता जा रहा है। कि चरित्र का राजनिति से कोई सम्बन्ध नहीं। पतंजलि ब्रह्मचर्य के द्वारा समाज के दुराचारी व्यक्तियों को ही नियन्त्रित कर रहे हैं। योगी तो ब्रह्मचारी ही होता है। इतना ही नहीं, व्यास जी तो यह भी लिखते हैं कि उपस्थेन्द्रिय के समान अन्य लोलुप इन्द्रियों को भी विषयों से रोकने का नाम ब्रह्मचर्य है। यदि ब्रह्मचय की इस परिधि को अपना लिया जाए

तो व्यक्ति का जीवन पूर्णत: नियन्त्रित हो जाए।

पतंजलि ने अस्तेय तथा सत्य का भी विधान किया है। आज समाज ने दोनों को ही परे फेंक दिया। अस्तेय की परिधि विशाल है। किसी के द्रव्य को उसकी अनुमति के बिना लेना स्तेय है। अपनी ड्यूटी का पूरे समय ठीक से पालन न करना स्तेय है। पदार्थों में मिलावट कराना स्तेय है। मासिक वेतन के अतिरिक्त दो नम्बर की कमाई करना स्तेय है। झुठे बिल बनाना स्तेय है। यह जानते हुए भी पूरा समाज इस स्तेह (चोरी) में लिप्त है। इसके लिए असत्य का आश्रय लेता है। यदि पतंजलि के अस्तेय तथा सत्य का पाठ समाज एवं राष्ट्र ने पढ़ लिया होता तो उसका नैतिक चरित्र पतन की ओर न जाकर उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता।

यहां संक्षेप में यही प्रतिदिन किया गया है कि Meditation के नाम पर आँख मीचकर बैठ जाने का तथा योगासन मात्र कर लेने का नाम योग नहीं है, अपितु यह तो समग्र जीवन दर्शन है तथा क्रियात्मक रूप में जीवन को शुद्धता की ओर ले जाकर दु:खरहित करने की वैज्ञानिक पद्धति है। पतंजलि के अनुसार योगभ्यासी व्यक्ति ईश्वर विश्वासी होगा। वह सन्तोषी, तपस्वी, अहिंसक, सत्यवादी, स्वाध्याशील तथा ब्रह्मचारी होगा। वह इन्द्रियलोलुप नहीं होगा। जब ऐसे व्यक्ति होंगे तो समाज सुधरेगा या नहीं? वर्तमान समस्याएं समाप्त होगी या नहीं? इसलिए योग को हम क्रियात्मक रूप में जीवन में अपना लेना चाहिए। तभी समाज का परिशोधन होगा। तभी वर्तमान समस्याओं का समाधान होगा। भोगवादी तथा स्वेछाचारी व्यक्ति का योग में प्रवेश नहीं है।

भगवान तुम्हारे दर पर

भगवान तुम्हारे दर पर भक्त आन खड़े हैं।
संसार के बन्धन से परेशान बड़े हैं।
ओ मालिक मेरे ! ओ मालिक मेरे ....

संसार के निराले कलाकार तुम्हीं हो।
सब जीव जन्तुओं के सृजनहार तुम्हीं ही।
तुझ परम प्रभु का मन में लिए ध्यान खड़े हैं।
संसार के बन्धनों से परेशान बड़े हैं, ओ मालिक मेरे....

तुम वेद ज्ञान दाता पिताओं के पिता हो ।
वह राज़ कौन-सा है कि जो आपसे छिपा हो।
हम तो हैं अनाड़ी, बालक बिना ज्ञान अड़े हैं।
संसार के बन्धनों से परेशान बड़े हैं, ओ मालिक मेरे....

सुनकर विनय हमारी स्वीकार करोगे।
मझधार में है नैया तुम्ही पार करोगे।
हर कदम पर आगे ये तूफान खड़े हैं।
संसार के बन्धनों से परेशान बड़े हैं, ओ मालिक मेरे....

दुनियां में आप जैसा कोई और नहीं है।
इस ठौर के बराबर कहीं ठौर नहीं है।
अपनी तो 'पथिक' मन्ज़िल है जो पहचान खड़े हैं।
संसार के बन्धनों से परेशान बड़े हैं, ओ मालिक मेरे....

●

प्रताप से वेद ज्ञान वसीयत में प्राप्त हुई है, इसे नष्ट भ्रष्ट करने के लिये अनेक षड़यंत्र रचे गये फिर भी आर्य समाज की बदौलत आज भी संसार को प्रकाशित कर रहा है।

आर्यो चिंतन का विषय है महर्षि ने जो वेद प्रचार एवं वेद की रक्षा की वसीयत हमें दी है। क्या हम उसकी रक्षा कर पाये है? हम अपने पैत्रिक सम्पति की रक्षा के लिये चार-चार हाथ करने के लिये तैयार रहते हैं लेकिन ऋषि वसीयत की रक्षा पर हम बेबस, लाचार और अपाहित हो गये हैं जो ऋषि ने हमें विचार, सिद्धांत, नियम, नैतिकता, आदर्श आदि दिये थे आज हम उनके विपरीत आचरण कर रहे हैं। हम मूल से हटते जा रहे हैं हम स्वार्थांध होते जा रहे है। इन्हीं बातों और करतूतों से हमारी विचार धारा में आस्था रखने वालों की संख्या बड़ी तेजी से घट रही है। युवा पीढ़ी हमसे दूर होती जा रही हैं । व्यक्ति के जाते ही उस परिवार से आर्य समाज का शांति पाठ हो जाता है। यह सत्य है कि संगछध्वं, मित्रस्य चक्षुसा, समानों मंत्रा, कृण्वन्तो विश्व मार्यम जैसे आदर्श वेद-ज्ञान की हम अवहोलना व खिल्ली उड़ा रहे हैं। ऋषि दयानन्द की आत्मा हमारी करतूतों पर कलपती होगी, हमें धिक्कारती होगी, रोती होगी!

इसलिये, हे आर्यों! उठो, जागो अपने को संभालों, समय की मांग है कि जिन उद्देश्यों के लिये ऋषि ने आर्य समाज की प्रतिष्ठा की थी, उसे स्मरण कीजिए और उसकी पूर्ति के लिये ब्रती व संकल्पी बनिये। जीवन शुद्ध व पवित्र बनाइये।, तप्, त्याग व सेवा भाव से संस्थाओं को सम्भाला।

पं संजय सत्याथी

सह-संपादक

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।
2. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।
5. सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सब से प्रीति-पूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये। और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में
श्री/मेसर्स ....
ग्रा० ....
पो० ....
जिला ....

मुद्रित सामग्री

(प्रतिलिपि के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।